इस अनुवाद में मेरे मित्र श्री माधोलाल ने यथेष्ट सहायता दी है, एतदर्थ मैं उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

पाठकों से निवेदन है कि यदि किसी तरह की त्रुटि इस पुस्तक में दिखाई पड़े तो कृपया सूचित करें, ताकि आगामी संस्करण में उसे दूर किया जा सके।

—अनुवादक।

बड़े चाचाजी

१

मैं गांव से कलकत्ते आकर कालेज में भर्ती हो गया। उन दिनों शचीश बी० ए० में पढ़ रहा था। हम लोगों की उम्र लग-भग समान ही होगी।

शचीश को देखने से मालूम होता जैसे कोई तेजस्वी नक्षत्र है—उसकी आँखें तेज चमक रही हैं, उसकी लम्बी-लम्बी पतली अंगुलियां मानों अग्नि की शिखायें हैं, उसके शरीर का रङ्ग मानों रङ्ग ही नहीं, बल्कि आभा है। शचीश को जब मैंने देखा, उसी क्षण मानों उसकी अन्तरात्मा को ही देख लिया—इसीलिये एक मुहूर्त में ही मैं उसे प्यार करने लगा।

किन्तु आश्चर्य तो यह है कि जो लोग शचीश के साथ पढ़ते हैं, उनमें से बहुतों के मन में उसके प्रति बड़ा विद्वेष है। असल बात तो यह है कि, जो लोग दस आदमियों की तरह हैं, उनका अकारण ही दस के साथ कोई झगड़ा नहीं होता। किन्तु मनुष्य

के अन्दर का देदीप्यमान सत्यपुरुष जिस समय स्थूलता भेदकर दिखाई पड़ता है तब, बिना कारण ही कोई तो उसकी ज्ञान से पूजा करता है और कोई अकारण ही उसे जी-जान से अपमानित करता है। मेरे मेस के लड़कों ने समझ लिया था कि मैं मन ही मन शचीश के प्रति भक्तिभाव रखता हूँ। इस बात से सदा ही मानो उनके आराम को चोट पहुँचती थी। इसलिये मुझे सुनाकर शचीश के सम्बन्ध में कटूक्ति करने में उनका एक दिन भी खाली नहीं जाता था। मैं यह जानता था कि आंख में बालू पड़ जाय तो उसे रगड़ने से वह ज्यादा दुःख होता है;—जहां पर कर्कश वचन सुनाई पड़े वहां उत्तर न देना ही अच्छा है। किन्तु एक दिन शचीश को लक्ष्य करके ऐसी निन्दनीय बातें उठीं कि मैं चुप न रह सका।

मेरी कठिनाई यही थी कि मैं शचीश को अच्छी तरह नहीं जानता था। दूसरे पक्ष के लोगों में से कुछ उसके अड़ोस-पड़ोस के थे और कुछ उससे रिश्तेदारी का नाता जोड़े हुए थे। वे खूब जोरदार शब्दों में बोल उठे, यह बात बिल्कुल ही सच है। मैंने और भी-जोर देकर कहा, इसमें रत्ती भर भी विश्वास नहीं करता। इस पर मेस भर के सभी लड़के आस्तीन समेटकर बोल उठे—तुम तो बड़े ही असभ्य मालूम पड़ते हो जी।

उस रात को विस्तर पर लेटे-लेटे मुझे रुलाई आ गई। दूसरे दिन क्लास की पढ़ाई के बीच थोड़ी देर की छुट्टी मिलने पर, जब शचीश गोलदीघी की छाया में घास पर लेटा हुआ एक पुस्तक पढ़ रहा था, मैं बिना जान-पहचान के ही उसके पास जाकर अएटसएट क्या-क्या बक गया, इसका कोई ठिकाना नहीं। शचीश पुस्तक बन्द करके मेरे मुँह की ओर कुछ देर तक

देखता रहा। जिन्होंने कभी उसकी आँखें नहीं देखी हैं, वे नहीं समझ सकते कि वह कैसी दृष्टि है।

शचीश ने कहा, जो लोग निन्दा करते हैं, वे निन्दा पसन्द करते हैं, इसीलिए करते हैं, सत्य के प्रति प्रेम रखने के कारण नहीं। यदि ऐसी ही बात है तो कोई निन्दा की बात सच नहीं है, यह प्रमाणित करने के लिए छटपटाने से क्या लाभ होगा?

मैंने कहा, तो भी देखिये मिथ्यावादी को...

शचीश ने बीच ही में रोककर कहा—वे लोग तो मिथ्यावादी नहीं हैं। हमारे मुहल्ले में पक्षाघात की बीमारी के कारण एक तेली के लड़के के पैर काँपते हैं, वह कोई काम नहीं कर पाता। जाड़े के दिनों में उसको एक दामी कम्बल दिया था। उस दिन मेरा नौकर शिबू क्रोध में बड़बड़ाता हुआ आकर बोला, बाबूजी! उसका काँपना-ओपना तो एकदम बदमाशी है।—मुझमें कुछ अच्छाई है, इस बात को जो लोग महत्व देते हैं—उनकी दशा ठीक उस शिबू की ही तरह है वे लोग जो कुछ कहते हैं उसमें सचमुच ही विश्वास रखते हैं। सौभाग्य से मुझे अपनी जरूरत से अधिक एक दामी कम्बल मिल गया। शिबू के सभी साथियों ने एक मत से दृढ़ निश्चय कर लिया है कि, उसपर मेरा कोई अधिकार नहीं है। इस बात को लेकर उन लोगों के साथ झगड़ा करने में मुझे लज्जा मालूम होती है।

इसका कुछ भी उत्तर न देकर मैं बोल उठा, उन लोगों का कहना है कि आप नास्तिक हैं, क्या यह बात सच है?

शचीश ने कहा, हां, मैं नास्तिक हूं।

मेरा सिर झुक गया। मैंने मेस के लोगों से झगड़ा करते हुए कहा था कि शचीश किसी भी हालत में नास्तिक नहीं हो सकता।

शचीश के बारे में शुरू में ही मुझे दो बार बड़ी चोट पहुँच चुकी है। उसे देखते ही मैंने समझ लिया था कि वह ब्राह्मण का लड़का है। देवमूर्ति की तरह उसका मुखड़ा देखने में सफेद पत्थर का गढ़ा हुआ-सा मालूम होता था। मैंने सुना था कि उसकी वंशगत उपाधि मल्लिक है। मेरे गांव में भी मल्लिक उपाधिधारी एक घर कुलीन ब्राह्मण का है, किन्तु बाद को मुझे मालूम हुआ कि शचीश जाति का सुनार है। हमलोग निष्ठावान कायस्थ हैं। जातिमर्यादा के हिसाब से, हमलोग एक सोनार को हार्दिक घृणा की दृष्टि से देखते हैं और नास्तिक को तो नरघातक से भी अधिक—यहां तक कि गोमांस खानेवालों से भी बढ़कर पापी समझते हैं।

कोई भी बात न कहकर शचीश के मुंह की तरफ मैं देखता रहा, उस समय भी मैंने देखा कि मुँह पर वही ज्योति विराजमान है—मानो हृदय के अन्दर पूजा का प्रदीप जल रहा है।

किसी दिन भी किसी के मन में ऐसा ख्याल नहीं आ सकता था कि मैं किसी जन्म में सोनार के साथ बैठकर भोजन करूंगा और नस्तिकता में मेरा कट्टरपन मेरे गुरु से भी आगे बढ़ जायेगा। धीरे-धीरे मेरे भाग्य में ये घटनाएं भी घटीं।

हमारे कालेज में विलकिन्स साहब साहित्य के अध्यापक थे। उनकी जैसी विद्वत्ता थी, छात्रों के प्रति उनकी वैसी ही अवज्ञा भी थी। इस देश के कालेजों में बङ्गाली लड़कों को साहित्य पढाना, शिक्षा-कार्य में कुली मजदूरों का काम करना है, यही उनकी धारणा थी। इसलिए मिल्टन और शेक्सपीयर रचित ग्रन्थों को पढ़ाते समय क्लास में वे अंग्रेजी 'बिल्ली' शब्द के लिए दूसरा शब्द मार्गारजातीय चतुष्पद बताते थे। किन्तु नोट लिखने के बारे में शचीश को उन्होंने माफी दे रखी थी। वे कहते

थे, शचीश! तुमको इस क्लास में जो बैठना पड़ता है,
क्षतिपूर्ति मैं कर दूँगा, तुम मेरे घर आ जाना, वहाँ तुम्हा
का स्वाद मैं बदल सकूँगा।

छात्र दंग होकर कहते, साहब शचीश को इतना मान
इसका कारण उसके शरीर का रंग साफ होना ही है, औ
साहब का मन घुमाने के लिए नास्तिकता का प्रचार कर
उनमें से कुछ बुद्धिमान, आडम्बर के साथ साहब के पास
रिलिजन के सम्बन्ध में लिखी पुस्तकें मँगाने के लिए गये
साहब ने कह दिया था कि तुम लोग समझ न सकोगे। वे
नास्तिकता की चर्चा करने में भी अयोग्य हैं, इस बात से
कता और शचीश के विरुद्ध उनका क्षोभ केवल बढ़ता ह
रहा था।

——*

२

मत और आचरण के सम्बन्ध में शचीश के जीवन मे
जो निन्दा के कारण हैं, उन सबका संग्रह करके मैंने
लिया। इसमें से कुछ उससे मेरी जान-पहचान होने के पहले की
थीं, और कुछ बाद की।

जगमोहन शचीश के बड़े चाचा थे। उस ज़माने के
सुप्रसिद्ध नास्तिक थे। यह कहना कि वे ईश्वर में अवि
करते थे, उनके बारे में थोड़ा ही कहना होगा—ईश्वर न
इसी बात में वे अविश्वास करते थे। जंगी जहाज के कप्तान
जहाज चलाने की अपेक्षा जहाज डुबा देना ही

होता है, वैसे ही, जहां भी सुविधा मिले वहीं पर आस्तिक धर्म को डुबा देना ही जगमोहन का धर्म था। ईश्वर में विश्वास करने वालों के साथ वे इसी पद्धति से तर्क करते थे।

यदि ईश्वर है तो मेरी बुद्धि उनकी ही दी हुई है। वही बुद्धि कह रही है कि ईश्वर नहीं है।

फिर भी, तुम लोग उनके ही मुंह पर जवाब देकर कह रहे हो कि ईश्वर है। इसी पाप के दण्ड में तो तीस करोड़ देवता तुम लोगों के दोनों कान पकड़कर जुर्माना वसूल कर रहे हैं।

लड़कपन में ही जगमोहन का विवाह हो गया था। युवावस्था में जब उनकी स्त्री मर गयी, उसके पहले वे मेलथस् पढ़ चुके थे। उन्होंने फिर विवाह नहीं किया।

उनके छोटे भाई हरिमोहन शचीश के पिता थे। अपने बड़े भाई के स्वभाव से उनका स्वभाव इतना भिन्न था कि उसको लिखने से लोग सन्देह करने लगेंगे कि कोई कहानी गढ़ी गई है? किन्तु कहानियां ही लोगों का विश्वास छीनने के लिए सावधान होकर चलती हैं, सत्य के लिए ऐसा कोई झमेला नहीं है, इसलिये सत्य अद्भुत होने से नहीं डरता। इसलिये प्रातःकाल और सायंकाल जैसे एक दूसरे से विपरीत हैं, संसार में बड़े भाई भी ठीक उसी तरह एक दूसरे से विपरीत हैं, ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है।

हरिमोहन बचपन में बीमार रहा करते थे। शान्ति स्वस्त्ययन साधु-वैरागियों की जटा से निचोड़ा हुआ जल, विशेष, विशेष तीर्थ स्थानों की धूलि, अनेक जाग्रत प्रसाद और चरणामृत, गुरु-पुरोहितों से अनेक रुपयों के बदले में मिले आशीर्वाद के द्वारा, उनको मानों सभी अकल्याणों से बचाकर किलेबन्दी करके रखा गया था।

उम्र अधिक होनेपर उनको और कोई बीमारी नहीं रह गयी थी, किन्तु वे इतने आलसी हो गये थे कि संसार से अपनी इस आदत को दूर न कर सके। किसी तरह वे बचे रहें, इससे अधिक उनसे कोई कुछ और नहीं चाहता था। उन्होंने भी इस सम्बन्ध में किसी को निराश नहीं किया, खूब मजे में जीवित रह गये। किंतु शरीर मानों अब गया तब गया, इस तरह का भाव दिखाकर उन्होंने सभी को धमका रखा था। विशेषकर अपने पिता की थोड़ी ही उम्र में मृत्यु हो जाने की नजीर के बल पर, उन्होंने अपनी मां और मौसी को समस्त सेवा और देख-भाल करने के लिए अपनी ओर खींच लिया था। सबसे पहले वे भोजन करते, सब लोगों से उनके भोजन की व्यवस्था स्वतन्त्र रहती, सब लोगों से कम उनको काम करना पड़ता और सब लोगों से अधिक वे विश्राम करते थे। केवल मां और मौसी के ही नहीं, वरन् वे तो त्रैलोक्य के सभी देवताओं के विशेष संरक्षण में हैं, इस बात को वे कभी नहीं भूलते थे। केवल देवी-देवताओं को ही नहीं, संसार में जहां कहीं, जिससे जिस परिमाण में सुविधाएँ मिल सकती हैं, उनको वे नमः पारम... मानकर चलते थे। थाने के दारोगा, धनवान पड़ोसी, ऊंचे ओहदे के राजकर्मचारी, अखबार के सम्पादक, सभी के ... यथोचित भक्ति करते थे—गो-ब्राह्मणों की तो कोई ... नहीं थी।

जगमोहन का विचार ठीक इसके विपरीत था। ... से लेशमात्र भी सहायता की आशा नहीं करते ... का जरा भी सन्देह कहीं किसी के मन में न ... से वे शक्तिसम्पन्न लोगों को अपने से दूर रखकर ही ... वे देवताओं को नहीं मानते थे, इससे भी उनका ...

निहित था। लौकिक या अलौकिक किसी शक्ति के सामने वे हाथ जोड़ने को तैयार नहीं थे।

ठीक समय पर अर्थात् ठीक समय के बहुत पहले हरिमोहन का विवाह हो गया। तीन लड़कों और तीन लड़कियों के बाद शचीश का जन्म हुआ। सभी ने कहा कि बड़े चाचा के साथ शचीश का चेहरा आश्चर्यजनक रूप से मेल खा रहा है। जगमोहन ने भी उसपर इस तरह अधिकार कर लिया था मानो उनका अपना ही लड़का हो।

इसमें जितना लाभ था, हरिमोहन पहले उतने का हिसाब लगाकर खुश थे। क्योंकि जगमोहन ने शचीश की पढ़ाई का भार अपने ही ऊपर ले लिया था। अंग्रेजी भाषा के असाधारण विद्वान् के रूप में जगमोहन की प्रसिद्धि थी। कुछ लोगों के मतानुसार वे बङ्गला के मैकाले और कुछ लोगों के मत से वे बङ्गाल के जॉनसन थे। घोंघे की खोली की तरह मानों वे अँग्रेजी पुस्तकों से घिरे हुए थे। कङ्कड़-रोड़ों की रेखाओं को देखकर पहाड़ के ऊपर जिस तरह झरने का रास्ता पहिचाना जाता है, उसी तरह मकान के किन-किन हिस्सों में उनकी गति-विधि होती है, इसकी पहिचान फर्श से लेकर छत तक अँग्रेजी पुस्तकों के ढेर देखने से ही हो जाती थी।

हरिमोहन ने अपने बड़े लड़के पुरन्दर को स्नेह के रस से एकदम पिघला दिया था। वह जो कुछ माँगता था वे उसके लिए इनकार नहीं कर सकते थे। उसके लिए सदा ही उनकी आँखें मानो आँसुओं से भरी रहती थीं—उनको ऐसा मालूम होता था मानो किसी बात में बाधा डालने से वह बचेगा ही नहीं। उसकी पढ़ाई-लिखाई तो कुछ हुई ही नहीं—जल्दी-जल्दी विवाह हो गया और उस विवाह के घेरे के अन्दर कोई भी

उसे पकड़कर न रख सका। हरिमोहन की पुत्रवधू इसपर होहल्ला मचाकर आपत्ति प्रकट करती थी और—हरिमोहन अपनी पुत्र-वधू पर क्रुद्ध होकर कहते थे कि घर में इसी के उप-द्रव से उनके लड़के को बाहर सान्त्वना का रास्ता ढूँढ़ना पड़ रहा है।

इन्हीं सब कारणों को देखकर पितृस्नेह की विषम विपत्ति से शचीश को बचाने के लिए जगमोहन ने उसको अपने पास से ज़रा भी हटने नहीं दिया। शचीश देखते-देखते कम अवस्था में ही अंग्रेजी लिखने में पक्का हो गया, किन्तु इसी स्थान पर वह रुका नहीं। अपने मस्तिष्क में मिल बेन्थम का अग्निकाण्ड धधकाकर वह मानों नास्तिकता के मशाल की भाँति जलने लगा।

जगमोहन शचीश के साथ इस तरह का बर्ताव करते थे मानों वह उनकी समान उम्र का ही हो। गुरुजनों के प्रति भक्तिभाव रखना अपने मत से वे एक झूठा संस्कार समझते थे, क्योंकि यह मनुष्य के मन को गुलामी में पक्का कर देता है। घर के किसी नये दामाद ने उनको 'श्री चरणेषु' सम्बोधन करके चिट्ठी लिखी थी। इसपर उन्होंने निम्नलिखित रूप से उसे उपदेश दिया था—'माई डियर' नरेन, चरण को श्री कहने से क्या कहा जाता है यह मैं भी नहीं जानता और तुम भी नहीं जानते, इसलिए यह निरर्थक शब्द है; इसके अतिरिक्त मुझे एकदम ही छोड़कर तुमने मेरे चरणों में कुछ निवेदन किया है, तुमको जान लेना चाहिये कि मेरा चरण मेरा ही एक अंश है, जबतक वह मेरे साथ लगा हुआ है तबतक उसे अलग करके देखना उचित नहीं है, इसके सिवा वह अंश हाथ भी नहीं है, कान भी नहीं है, उससे कुछ निवेदन करना पागलपन है, इसके बाद अन्तिम बात यह है कि मेरे चरणों से सम्बन्ध

का प्रयोग करने से भक्ति प्रकट की जा सकती है, क्योंकि कोई-कोई चौपाये तुमलोगों के भक्तिभाजन हैं, किन्तु इससे मेरी प्राणीतत्व-सम्बन्धी जानकारी में तुम्हारी अज्ञानता का संशोधन कर देना मैं उचित समझता हूँ।

—*—

३

उन सभी विषयों पर शचीश के साथ जगमोहन आलोचना करते थे, जिन्हें लोग साधारणतः दबा रखते हैं, इस बात को लेकर यदि कोई आपत्ति करता तो वे कहते कि बर्रे के छत्ते उजाड़ देने से बर्रे खदेड़े जा सकते हैं, उसी तरह इन सब बातों में लज्जा करना हटा देने से ही, लज्जा का कारण हटाया जाता है; शचीश के मन से मैं लज्जा का निवास स्थान हटा दे रहा हूं।

लिखना-पढ़ना जब पूरा हो गया, तब हरिमोहन शचीश को बड़े चाचा के हाथ से उद्धार करने के लिये जी-जान से लग गये। किन्तु कील उस समय तक गले में बंध चुकी थी, फंस चुकी थी,—इसलिये एक तरफ का खिंचाव जितना ही प्रबल होता गया, दूसरी तरफ का बन्धन भी उतना ही प्रबल होता गया। इस हालत में हरिमोहन लड़के की अपेक्षा अपने बड़े भैया पर ही अधिक क्रोध करने लगे। भैया के सम्बन्ध में तरह-तरह की निन्दा से मुहल्ले को उन्होंने भर दिया।

यदि केवल मत या विश्वास की बात रहती तो हरिमोहन आपत्ति न उठाते। मुर्गी खाकर, लोक-सभा में बकरा कहकर

उसका परिचय देने पर भी वे सह लेते; किन्तु ये लोग इतनी दूर चले गये थे कि झूठ की मदद से भी इन लोगों को छुटकारा देने का उपाय नहीं था।

जिस बात से सबसे अधिक चोट लगी उसका वर्णन कर रहा हूँ—

जगमोहन के नास्तिक धर्म का एक प्रधान अंग था लोगों की भलाई करना। इस भलाई करने में और जो भी रस हो, पर एक प्रधान रस यह था, कि नास्तिकों के लिये लोगों की भलाई करने में केवल अपने नुकसान के सिवा और कुछ भी नहीं है,—उनमें न तो कोई पुण्य है, न तो पुरस्कार है, न तो किसी देवता या शास्त्र के पुरस्कार का विज्ञापन, या आँख दिखाना ही है। यदि कोई उनसे पूछता कि प्रचुरतम लोगों के प्रभूततम सुखसाधन में आपका क्या गरज है? तो वे कहते, कुछ भी गरज नहीं है, और यही मेरी सबसे बड़ी गरज है। वे शचीश से कहते, देखना भैया, हमलोग नास्तिक हैं और उसी की लपेट में हमलोगों को एकदम निष्कलंक और निर्मल होना पड़ेगा। हमलोग कुछ भी नहीं मानते इसीलिए अपने को मानने का जोर अधिक रखते हैं।

प्रचुरतम लोगों के प्रभूततम सुखसाधन में उनका प्रधान चेला था शचीश। मुहल्ले में चमड़े की कई बड़ी आढ़तें थीं। वहाँ के मुसलमान व्यापारियों और चमारों को लेकर चचा-भतीजे एक साथ मिलकर, इस प्रकार के घनिष्ठ हितानुष्ठान में लग गये कि हरिमोहन की तिलक-मुद्रा अग्निशिखा की तरह जलकर उनके मस्तिष्क में लङ्काकाण्ड मचाने का उपक्रम लगी। भैया के सामने शास्त्र या अविचार-विचार की दो देने से उलटा काम निकलेगा, इसलिये उनके सा

पैतृक सम्पति के अनुचित अपव्यय का अभियोग उठाया। भैया ने कहा, तुम मोटी तोंदवाले पण्डे-पुरोहितों के लिये जितने रुपये खर्च कर चुके हो, मेरे खर्च की मात्रा पहले वहीं तक तो उठ जाने दो, फिर उसके बाद तुम्हारे साथ हिसाब-किताब का समझौता हो जायगा।

घर के लोगों ने एक दिन देखा कि मकान के जिस हिस्से में जगमोहन रहते हैं उसमें एक बड़े भोज की तैयारी हो रही है। उसमें रसोइयों और परिवेशकों में सभी मुसलमान हैं। हरिमोहन ने क्रोध से घबड़ाकर शचीश को बुलाकर कहा, तू क्या आज अपने सब चमार बन्धुओं को बुलाकर इस मकान में खिलाने जा रहा है?

पुरन्दर क्रोधित होकर छटपटाता हुआ चक्कर काट रहा था, कह रहा था, मैं देखूँगा किस तरह वे लोग इस मकान में आकर भोज खाते हैं।

हरिमोहन ने भैया के सामने आपत्ति प्रकट की तो जगमोहन ने कहा, तुम अपने देवता को रोज ही भोग चढ़ाते हो तो मैं कुछ भी नहीं कहता, अपने देवताओं को मैं एक दिन भोग चढ़ाऊँगा, इसमें तुम रुकावट मत डालो।

तुम्हारे देवता?

हाँ मेरे देवता?

तुम क्या ब्राह्म हो गये हो?

ब्राह्म लोग निराकार मानते हैं, उसे आंखों से देखा नहीं जाता। तुमलोग साकार मानते हो उसको कान से सुना नहीं जाता हम लोग सजीव को मानते हैं, उसे आंखों से देखा भी जाता है; और कानों से सुना जाता है—उसपर विश्वास किये बिना तो रहा ही नहीं जा सकता।

ये चमार और मुसलमान तुम्हारे देवता हैं ?

हाँ, ये चमार मुसलमान मेरे देवता हैं। इनकी एक आश्चर्य-जनक शक्ति, तुम देख सको तो देख लोगे कि इनके सामने भोग की सामग्री रखने पर ये अनायास ही उसे हाथों से उठाकर खा जायँगे। तुम्हारे देवताओं में से एक भी ऐसा नहीं कर सकता। मैं इस आश्चर्यजनक रहस्य को देखना पसन्द करता हूँ, इस-लिए अपने देवता को अपने घर बुलाया है—देवता को पहचानने में तुम्हारी आँखें यदि अन्धी न होतीं तो तुम खुश होते।

पुरन्दर ने अपने बड़े चाचा के पास जाकर खुद गला फाड़-फाड़ कर कड़ी-कड़ी बातें कहीं और उन्हें सूचना दे दी कि वह एक भयंकर काण्ड कर डालेगा।

जगमोहन ने हँसकर कहा—अरे बन्दर, मेरे देवता कितने बड़े जाग्रत देवता हैं, यह तो तू उनके शरीर पर हाथ लगाते ही समझ जायगा, मुझे कुछ भी न करना पड़ेगा।

पुरन्दर चाहे जितनी ही शेखी हाँकता फिरे, परन्तु वह अपने बाबूजी से भी अधिक डरपोक है। जहाँ पर उसका दाव लगता है वहीं पर उसका जोर चलता है। मुसलमान पड़ोसियों से छेड़छाड़ करने का साहस उसे नहीं हुआ। शचीश के पास गया और उसे गालियाँ देने लगा। शचीश अपनी आश्चर्यपूर्ण आँखों से भाई के मुँह की तरफ देखता रहा—एक बात भी अपने मुँह से नहीं निकाली। उस दिन का भोज निर्विघ्न हो गया।

४

इसबार हरिमोहन कमर कसकर भैया के विरुद्ध लग गये। जिसके सहारे इनलोगों के परिवार का खर्च चलता है वह देवोत्तर सम्पत्ति है। जगमोहन विधर्मी और आचारभ्रष्ट हैं, इस कारण वे सर्वाधिकारी होने के योग्य नहीं हैं। इसी बात को लेकर हरिमोहन ने जिले की अदालत में मुकदमा दाखिल कर दिया। नामी गिरामी गवाहों की कमी नहीं थी—मुहल्ले भर के लोग गवाही देने को तैयार थे।

अधिक कौशल करने की आवश्यकता नहीं हुई। जगमोहन ने अदालत में स्पष्ट स्वीकार कर लिया कि वे देवी-देवताओं में विश्वास नहीं करते, खाद्य-अखाद्य का विचार नहीं करते, मुसलमानों की उत्पत्ति ब्रह्मा के किस अङ्ग से हुई है इसको वे नहीं जानते और उनके साथ बैठकर खाने-पीने में उनको कोई भी आपत्ति नहीं है।

मुन्सिफ ने फैसले में जगमोहन को सर्वाधिकारी पद के लिये अयोग्य करार दिया। जगमोहन के पक्ष के कानूनदाँ वकीलों ने आश्वासन दिया कि यह फैसला हाईकोर्ट में टिक न सकेगा। जगमोहन ने कहा, मैं अपील नहीं करूँगा। जिस देवता को मनाने लायक बुद्धि जिनके पास है, देवता को वंचना करने लायक धर्मबुद्धि भी उन्हीं लोगों मे है।

मित्रों ने पूछा—खाओगे क्या?

उन्होंने कहा—कुछ खाने को न जुटेगा तो हवा ही खाऊँगा।

इस मुकदमे को जीतकर उछल-कूद मचाने की इच्छा हरिमोहन की नहीं थी। उसको यह भय था कि पीछे भैया के अभिशाप से कहीं कोई कुफल प्रकट न हो जाय। किन्तु पुरन्दर उस दिन चमारों को घर से खदेड़ न सका था, उसी की आग उसके मन में जल रही थी। किसके देवता जाग्रत हैं, इस बार तो यह प्रत्यक्ष ही दिखाई पड़ा। इसलिये पुरन्दर ने ज्ञव तड़के से ही ढोल-मजीरा मँगाकर मुहल्ले को सिर पर उठा लिया। जगमोहन के यहां उनका एक मित्र आया था। वह कुछ जानता नहीं था—उसने पूछा मामला क्या है जी? जगमोहन ने कहा—आज मेरे देवता का धूमधाम के साथ विसर्जन हो रहा है, इसीलिये यह बाजा-गाजा है। दो दिनों तक स्वयं उद्योग करके पुरन्दर ने ब्राह्मण भोजन करा दिया। पुरन्दर ही केवल इस वंश का कुल-प्रदीप है, सभी इसकी घोषणा करने लगे।

दोनों भाइयों में बँटवारा हो जाने पर कलकत्ते के मकान के बीचो-बीच एक दीवार खड़ी कर दी गयी।

धर्म के सम्बन्ध में जैसी भी बात क्यों न हो, पर खाने-पहिनने और रुपये पैसे के बारे में मनुष्य में एक तरह की स्वाभाविक सुबुद्धि है, इसीलिये मनुष्य जाति के प्रति हरिमोहन के मन में श्रद्धा थी। उन्होंने निश्चित रूप से समझ लिया था कि उनका लड़का, इस बार दरिद्र जगमोहन को छोड़कर कम से कम भोजन की गन्ध से उनके सोने के पिंजड़े में आ जायगा। किन्तु बाप की धर्मबुद्धि और कर्मबुद्धि में से एक को भी प्राप्त नहीं किया है, इसी बात का शचीश ने परिचय दिया। वह अपने बड़े चाचा के ही साथ रह गया।

जगमोहन को चिरकाल से शचीश को इस तरह अपना समझते रहने का अभ्यास पड़ गया था

बटवारे के दिन शचीश, जो उनके अपने हिस्से में पड़ गया इसमें उन्हें कुछ भी आश्चर्य नहीं प्रतीत हुआ।

किन्तु हरिमोहन अपने भैया को अच्छी तरह पहचानते थे। वे लोगों में यह प्रचार करने लगे कि शचीश को रोक कर जगमोहन अपने अन्न-वस्त्र की व्यवस्था करने की चाल चल रहे हैं। उन्होंने अत्यन्त साधुभाव एवं अश्रुपूर्ण नेत्रों से सबसे कहा—क्या मैं भैया को खाने पहिनने का कष्ट दे सकता हूँ, किन्तु मेरे लड़के को अपने हाथ में रखकर, भइया जो शैतानी चाल चल रहे हैं वह तो मैं किसी प्रकार भी न सहूँगा। देखता हूँ कि वे कितने बड़े चालाक हैं।

यह बात मित्रों के परस्पर वार्तालाप से बढ़ते-बढ़ते जब जगमोहन के कानों तक पहुँची तो वे एकाएक चौंक उठे। ऐसी बात उठ सकती है, यह उन्होंने कभी सोचा ही नहीं था। इसलिये वे अपने आपको नासमझ कहकर धिक्कारने लगे। शचीश से उन्होंने कहा—गुडबाई शचीश।

शचीश समझ गया कि जिस वेदना से जगमोहन ने इस विच्छेद वाणी का उच्चारण किया है, उसपर से और कोई बात नहीं चल सकती। आज तक से लेकर अठारह साल के अवच्छिन्न सम्बन्ध से शचीश को विदा ग्रहण करनी पड़ी।

शचीश जब अपना बक्स और बिछौना गाड़ी पर लादकर उनके पास से चला गया, तब जगमोहन दरवाजा बन्द करके अपने कमरे में फर्श पर लेट गये। सन्ध्या हो गयी थी। उनके नौकर ने कमरे में बत्ती जलाने के लिये दरवाजा खटखटाया, पर उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया।

हायरे प्रचुरतम मनुष्यों का प्रभूततम सुख साधन! मनुष्य के सम्बन्ध में विज्ञान की माप काम नहीं आ सकती। मस्तिष्क

करने की प्रथा नहीं थी। जगमोहन ने शचीश को आलिंगन करके चौकी पर बैठाया। बोले, क्या समाचार है?

एक विशेष समाचार है!

ननीबाला ने अपनी विधवा माँ के साथ अपने मामा के घर आश्रय लिया था। जितने दिनों तक उसकी माँ जीवित थी, किसी तरह की विपत्ति उसपर नहीं आयी। कुछ ही दिन हुए उसकी माता का देहान्त हुआ है। ममेरे भाई सभी दुश्चरित्र हैं। उन्हीं लोगों का एक मित्र ननीबाला को उसके आश्रय स्थान से निकाल ले गया था। कुछ दिनों के बाद ननी के चरित्र पर उसके मन में सन्देह होने लगा और इसी बात से वह उसको इतना तङ्ग करने लगा कि जिसका कोई ठिकाना नहीं। जिस मकान में शचीश मास्टरी करता है उसके पास वाले मकान में ही यह काण्ड हुआ है। शचीश इस अभागिनी का उद्धार करना चाहता है। किन्तु उसके पास न तो रुपये पैसे हैं और न तो कोई घर द्वार, इसीलिए वह अपने बड़े चाचा के पास आया है। इधर उस लड़की को सन्तानोत्पत्ति की भी सम्भावना है।

जगमोहन तो एकदम आग बबूला हो गये। वह पुरुष मिल जाता तो तुरन्त ही उसका सिर चूर-चूर कर डालते, उनके मन में ऐसा ही भाव उत्पन्न हो गया। वे इन सब मामलों में सब तरफ से सोच विचार करने वाले आदमी नहीं हैं। झटपट बोल उठे, अच्छी बात है, मेरी लाइब्रेरी का कमरा खाली है, उसी में मैं ठहरने को जगह दूँगा।

शचीश ने आश्चर्य में पड़कर कहा—लाइब्रेरी वाला कमरा! किन्तु पुस्तकें?

जितने दिनों तक काम नहीं मिला था, कुछ-कुछ पुस्तकें

बेचकर व्रजमोहन अपना दिन बिताते रहे। अब थोड़ी बहुत जो कुछ पुस्तकें बची हुई हैं वे सोने के कमरे में अट जायँगी।

व्रजमोहन ने कहा, उस लड़की को इसी समय ले आओ।

शचीश ने कहा, उसे ले आया हूँ, वह नीचे कमरे में बैठी हुई है।

व्रजमोहन ने नीचे उतर कर देखा कि सीढ़ी के पास वाले कमरे में, कपड़ों की गठरी की भाँति अवनत होकर एक लड़की एक कोने में जमीन पर बैठी हुई है।

व्रजमोहन तूफ़ान की तरह कमरे में घुसकर मेघ सदृश गम्भीर स्वर से बोल उठे—आओ मेरी बेटी आओ! धूल में क्यों बैठी हुई हो?

अपना मुँह आँचल में दबाकर वह फूट-फूटकर रोने लगी।

व्रजमोहन की आँखों में सहज ही आँसू नहीं आते। पर उनकी आँखें आँसू से छलछला उठीं। उन्होंने शचीश से कहा—शचीश, यह लड़की आज जिस लज्जा को ढो रही है वह मेरी ही लज्जा है। अहा! इसपर इतना बड़ा बोझ किसने लाद दिया?

बेटी, मेरे निकट लज्जा करने से काम न चलेगा—मेरे स्कूल के लड़के मुझे पगला बाबा कहते थे—आज भी मैं वही पगला हूँ। यह कहकर व्रजमोहन ने निःसङ्कोच भाव से उसके दोनों हाथ पकड़कर उसे खड़ी कराया—माथे पर से उसका घूँघट खिसक गया।

अत्यन्त दुर्बल [illegible], अवस्था कम, मुँह पर कहीं [illegible] नहीं कोई भी चिन्ह नहीं। फूल पर धूल [illegible] जाने से [illegible] उसकी अलौकिक पवित्रता नष्ट नहीं होती, वैसे ही [illegible] फूल जैसी लड़की की अन्तर्लौकिक पवित्रता

दूर नहीं हुआ है। उसकी दोनों काली आँखों में आहत हरिणी की भांति भय दिखायी पड़ रहा है। समस्त देहलता में लज्जा का संकोच भरा है, किन्तु इन सभी सकरुणताओं के भीतर कालिमा तो कहीं भी नहीं है।

ननीबाला को अपने ऊपरवाले कमरे में ले जाकर जगमोहन ने कहा—बेटी, यह देखो मेरे घर की श्री ! सात जन्मों से इनमें कभी झाड़ू नहीं लगा है, सभी इधर-उधर अस्तव्यस्त पड़ा है, और यदि मेरी बात पूछती हो तो कब खाता हूँ, कब नहाता हूँ, इसका कोई ठिकाना नहीं। तुम आ गई हो, अब मेरे घर की श्री लौटेगी, और पगला जगाई भी मनुष्य की तरह हो जायगा।

मनुष्य मनुष्य का कितना हो सकता है इसका अनुभव आज से पहले ननीबाला को नहीं हुआ था—यहां तक कि मां की जिन्दगी में भी नहीं। क्योंकि मां तो उसको लड़की के रूप में देखती नहीं थी, विधवा लड़की के रूप में देखती थी—उस सम्बन्ध का रास्ता आशङ्काओं के छोटे-छोटे कांटों से भरा हुआ था। किन्तु जगमोहन ने सम्पूर्ण अपरिचित होते हुए भी ननीबाला को, उसकी समस्त बुराइयों और भलाइयों का आवरण भेदकर ऐसे परिपूर्ण रूप से किस तरह ग्रहण कर लिया ?

जगमोहन ने एक बूढ़ी दासी को लगा दिया ताकि ननीबाला को कहीं पर कुछ भी संकोच न हो। ननी को बड़ा भय था कि जगमोहन उसके हाथ का खाना खायेंगे या नहीं—वह तो पतिता है। किन्तु बात ऐसी हुई कि जगमोहन उसके हाथ के सिवाय दूसरे के हाथ से खाना ही नहीं चाहते थे। वह स्वयं पकाकर पास बैठकर जबतक खिलाने नहीं बैठती, तब तक वे भोजन नहीं करेंगे, यही उनका प्रण था।

जगमोहन जानते थे कि इस बार एक बहुत बड़ी निन्दा की

बात आ रही है। ननी भी यह बात समझती थी और इसके लिये उसके भय का अन्त नहीं था। वह दो-चार दिनों में ही शुरू हो गया। दासी पहले समझती थी कि ननी जगमोहन की लड़की है—उसने एक दिन आकर ननी को क्या क्या अनाप-शनाप कह डाला और घृणा से नौकरी छोड़कर चली गयी। जगमोहन की बात सोचकर ननी का मुंह सूख गया। जगमोहन ने कहा—बेटी, मेरे घर में पूर्णचन्द्र का उदय हुआ है, इसीलिए निन्दा में अमावस्या पूर्णिमा की बाढ़ बुलाने का समय आया है—किन्तु लहरें जितनी ही मैली क्यों न हों, ज्योत्स्ना में तो दाग लगेगा नहीं।

जगमोहन की एक बूआ हरिमोहन के घर से आकर बोली, छिः-छिः कैसा काण्ड है जगाई! पाप को बिदा कर दे!

जगमोहन ने कहा, तुम लोग धार्मिक हो, तुम लोग ऐसी बात कह सकती हो, किन्तु यदि घर से पाप को बिदा कर दूँगा तो पापों की क्या गति होगी।

किसी रिश्ते की एक नानी ने कहा—लड़की को अस्पताल में भेज दो, हरिमोहन सब खर्च देने को तैयार हैं।

जगमोहन ने कहा—रुपये की असुविधा हुई है इसीलिए क्या माता को खामखा अस्पताल भेज दूँ? हरिमोहन यह कैसा [illegible] करता है?

नानी ने गाल पर हाथ रखकर कहा—माँ किसको कहता है रे? जगमोहन ने झट उत्तर दिया, जो जीव को गर्भ में धारण करती है उनको, जो प्राण को सङ्कट में डालकर बालक उत्पन्न करती है उनको। उस बच्चे के पाखण्डी बाप को तो [illegible] नहीं कहता। वह तो केवल विपत्ति लाता है, उसको तो कोई [illegible] ही नहीं है।

हरिमोहन का समूचा शरीर मानों घृणा के पसीने से तर हो गया। गृहस्थ घर की दीवार के उस पार ही बाप-दादे की जमीन पर एक भ्रष्ट लड़की इस तरह रहेगी, यह कैसे सहा जा सकता है।

इस पाप में शचीश घनिष्ठता के साथ लिप्त है और उसका नास्तिक चाचा इसमें उसे प्रश्रय दे रहा है, इस बात पर विश्वास करने में हरिमोहन को जरा भी द्विधा या देर नहीं हुई। विषय उत्तेजना के साथ वे इस बात का घूम-घूमकर प्रचार करने लगे।

यह अनुचित निन्दा जरा कम हो जाय, इसके लिये जग-मोहन ने किसी तरह की चेष्टा नहीं की। उन्होंने कहा—हमारे नास्तिकों के धर्मशास्त्र में भले कामों की निन्दा का विधान नरकभोग है—जन श्रति जितने ही नये-नये रङ्गों में नया-नया रूप धारण करने लगी, शचीश और नानी को अपना कर वे उतने ही उच्च हास्य के साथ आनन्द सम्भोग करने लगे। इस तरह की कुत्सित बात को लेकर भतीजे के साथ ऐसा काण्ड करना हरि-मोहन या उनकी तरह किसी दूसरे भले आदमी ने किसी दिन नहीं सुना था।

जगमोहन मकान के जिस हिस्से में रहते थे बटवारा होने के बाद पुरन्दर ने उसकी छाया तक का स्पर्श नहीं किया। उसने प्रतिज्ञा की कि पहले वह उस लड़की को मुहल्ले से खदेड़ देगा तब फिर कोई दूसरी बात होगी।

जगमोहन जब स्कूल जाते तब अपने मकान में प्रवेश करने के सभी रास्ते खूब अच्छी तरह बन्द करके जाते थे और ज्योंही जरा भी छुट्टी की सुविधा पाते, एक बार उसे देख जाने में नहीं चूकते थे।

एक दिन दोपहर के समय पुरन्दर अपने तरफ की एक छत की दीवार पर सीढ़ी लगाकर जगमोहन के खण्ड में कूद पड़ा। उस समय भोजन करने के बाद ननीबाला अपने कमरे में सो रही थी—दरवाजा खुला ही था।

कमरे में घुसकर निद्रामग्न ननी को देखकर, पुरन्दर ने आश्चर्य और क्रोध से गरजते हुये कहा—हूँ! तू यहाँ पर!

जाग उठने पर, पुरन्दर को देखते ही ननी का मुंह एकदम पीला पड़ गया। भाग जाने या मुंह से कोई बात निकालने लायक शक्ति उसमें नहीं रह गयी। पुरन्दर ने क्रोध से कांपते-कांपते पुकारा—ननी-ननी! ठीक उसी समय पीछे से जगमोहन कमरे में प्रवेश करके चिल्ला उठे, निकल जा मेरे घर से, निकल जा!

पुरन्दर क्रुद्ध बिल्ली की तरह गुर्राने लगा। जगमोहन ने कहा, यदि न निकलोगे तो मैं पुलिस बुलाऊंगा। पुरन्दर एक बार ननी की तरफ अग्नि-कटाक्ष फेंककर चला गया। ननी मूर्छित हो गयी।

जगमोहन समझ गये कि मामला क्या है। उन्होंने शर्वरी को बुलाकर पूछा तो हाल मालूम हो गया। शर्वरी को यह बात मालूम थी कि पुरन्दर ने ही ननी को नष्ट किया है, [illegible] में पड़कर वे कहीं [illegible] न मचाने लगें, इसीलिये उन्हें [illegible] भी नहीं [illegible] था। शर्वरी मन ही मन [illegible] कलकत्ता शहर में और कहीं भी पुरन्दर के उपद्रव से [illegible] नहीं है, [illegible] का ही मकान ऐसा है, [illegible] जीवन में [illegible] न होगा।

ननी [illegible] की दशा में कई दिन [illegible] की तरह काटती रही। इसके बाद [illegible] किया।

पुरन्दर ने एक दिन आधी रात को लात मारकर ननी को घर से निकाल दिया था। उसके बाद बहुत खोज करने पर भी उसे नहीं पा सका। ठीक ऐसे ही समय में बड़े चाचा के मकान में उसे देखकर, ईर्षा की आग से उसका शरीर सिर से पैर तक जलने लगा।

उसके मन में यह धारणा हुई कि शचीश ने अपने भोग के लिये ननी को उसके हाथ से छीन लिया है, उसपर से पुरन्दर को ही विशेषरूप से अपमानित करने के लिए उस लड़की को एकदम ही उसके मकान के ठीक पास ही लाकर रखा है! यह तो किसी तरह भी सहने योग्य नहीं है।

यह बात हरिमोहन को भी मालूम हो गयी। इसकी हरिमोहन को जानकारी करा देने में पुरन्दर को जरा भी लज्जा नहीं थी। पुरन्दर की इन सब दुष्कृतियों के प्रति उनके मन में एक तरह का स्नेह ही था।

शचीश अपने भाई पुरन्दर के हाथ से इस लड़की को छीन ले, यह उनको बहुत ही अशास्त्रीय और अस्वाभाविक मालूम हुआ। पुरन्दर इस असहनीय अपमान और अन्याय से अपनी प्राप्य वस्तु का उद्धार कर लेगा, यही उसके एकान्त मन का संकल्प हो उठा। तदनुसार रुपये की मदद से, उसने ननी की एक नकली माँ लाकर खड़ी कर दी और उसे जगमोहन के पास रोने-धोने के लिये भेज दिया। जगमोहन ने ऐसी भीषण मूर्ति धारण करके उसे खदेड़ दिया कि वह फिर उस तरफ गयी ही नहीं।

ननी दिन पर दिन म्लान होने लगी, मानों छाया की भांति विलीन हो जाने की तैयारी कर रही हो। उस समय क्रिसमस की छुट्टी थी। जगमोहन क्षणमात्र के लिये भी ननी को छोड़कर बाहर नहीं जाते थे।

तब उपाय क्या है ?

उपाय है। मैं ननी से विवाह कर लूँगा।

विवाह करोगे ?

हाँ, सिविल-विवाह कानून के अनुसार।

जगमोहन ने शचीश को छाती से लगा लिया। उनकी आँखों से झर-झर आँसू बहने लगे। इस तरह का अश्रुपात उन्होंने अपने जीवन में कभी नहीं किया था।

—*—

६

मकान का बँटवारा हो जाने के बाद हरिमोहन एक दिन भी जगमोहन को देखने के लिए नहीं आये। उस दिन रुक्ष और अस्तव्यस्त हालत में ही आ गये। बोले—भैया, सर्वनाश की यह कैसी बात सुन रहा हूँ ?

जगमोहन ने कहा, सर्वनाश होने की ही बात थी, अब उससे बचने का उपाय हो रहा है।

भैया, शचीश तुम्हारे लड़के के समान है—उसके साथ तुम इस पतिता लड़की का विवाह करोगे ?

शचीश को मैंने अपने लड़के की ही तरह पालन-पोषण कर मनुष्य बनाया है—आज मेरा वह परिश्रम सार्थक हो गया। उसने मेरा मुँह उज्ज्वल कर दिया।

भैया, मैं तुमसे हार मान रहा हूँ—अपनी आमदनी का आधा हिस्सा मैं तुम्हारे नाम लिख देता हूँ, मुझसे ऐसा भयंकर बदला मत लो।

जगमोहन कुर्सी छोड़कर उठ खड़े हुए और बोले—क्या ! तुम अपने जूठे पत्तल का आधा देकर मुझे कुत्ते की तरह फुसलाने आये हो ? मैं तो तुम्हारी तरह धार्मिक नहीं हूं, मैं नास्तिक हूँ, यह बात याद रखना—मैं क्रोध का बदला भी नहीं लेता और अनुग्रह की भिक्षा भी नहीं लेता।

हरिमोहन शचीश के मेस में जाकर उपस्थित हुये। उसे एकान्त में बुलाकर उन्होंने कहा—यह क्या सुन रहा हूं ? तुझे क्या मरने के लिए कहीं जगह नहीं मिली ? इस तरह कुल में कलंक लगाने को तैयार हो गया ?

शचीश ने कहा—कुल का कलंक मिटाने के लिए ही मेरी यह चेष्टा है, नहीं तो विवाह करने का मुझे कोई शौक नहीं है।

हरिमोहन ने कहा, तुमको क्या जरा भी धर्मज्ञान नहीं है ? वह लड़की तेरे भाई की स्त्री के समान है, उसे तू—

शचीश ने बीच में रोककर कहा—स्त्री के समान ? ऐसी बात मुँह से मत निकालिएगा।

इसके बाद जो भी मुँह से निकला वही कहकर हरिमोहन शचीश को गाली देने लगे। शचीश ने कोई उत्तर नहीं दिया।

हरिमोहन पर अब यह एक नयी आफत आ पड़ी है। पुरन्दर निर्लज्ज की भाँति घूम-घूमकर कह रहा है, यदि शचीश ननी से विवाह कर लेगा तो वह आत्महत्या करके प्राण दे डालेगा। उधर पुरन्दर की स्त्री का कहना है कि ऐसा हो जाय तो बला दूर हो जायगी, किन्तु यह तो तुम्हारी सामर्थ्य के बाहर की बात है। हरिमोहन पुरन्दर की इस धमकी में पूरा विश्वास करते हों ऐसी बात नहीं, किन्तु उनका भय दूर नहीं हो रहा था।

शचीश इतने दिनों तक ननी से दूर ही दूर

था। एकान्त में तो एक दिन भी उससे भेंट नहीं हुई। यहाँ तक कि उससे दो चार बातें भी हुई या नहीं इसमें सन्देह है। विवाह की बात जब पक्की हो गयी तब जगमोहन ने शचीश से कहा—विवाह के पहले एकान्त में एक दिन ननी से अच्छी तरह बातचीत कर लो, एक बार दोनों को एक दूसरे के मन से परिचित हो जाना आवश्यक है।

शचीश राजी हो गया।

जगमोहन ने दिन नियत कर दिया। ननी से उन्होंने कहा, बेटी, आज तुमको मेरी रुचि के अनुसार अपनी सजावट करनी पड़ेगी।

ननी ने लज्जा के मारे सिर झुका लिया।

नहीं बेटी, लाज से काम न चलेगा। मेरी आन्तरिक साध है कि आज तुम्हारी सजावट देख लूं—मेरी यह इच्छा तुमको पूरी कर देनी पड़ेगी।

यह कहकर, उन्होंने चुनी हुई बनारसी साड़ी, अँगिया और ओढ़ने की चादर, जिन्हें वे अपनी पसन्द से खरीद ले आये थे, ननी के हाथ में दे दिया।

ननी ने जमीन पर लेटकर उनकी चरण धूलि ले प्रणाम किया। घबड़ाकर अपने पैर खींचते हुए बोले, इतने दिन हो गये तो भी मैं तुम्हारे मन से भक्ति दूर न कर सका। उम्र में भले ही मैं बड़ा हूं, किन्तु बेटी, तुम तो माता होने के नाते मुझसे भी बड़ी हो।—यह कहकर उसका मस्तक चूम कर वे बोले—भवतोष के घर से मुझे निमन्त्रण मिला है, लौटने में कुछ रात हो जायगी।

ननी ने उसका हाथ पकड़कर कहा, बाबूजी आज तुम मुझे आशीर्वाद दो।

१

मृत्यु के पहले नास्तिक जगमोहन ने अपने भतीजे शचीश से कहा—'यदि श्राद्ध करने का तुम्हें शौक हो, तो अपने बाप का ही करना, बड़े चाचा का नहीं।' उनकी मृत्यु का विवरण इस प्रकार है—

जिस वर्ष कलकत्ते में पहले-पहल प्लेग अवतरित हुआ, तब प्लेग की अपेक्षा, राजकीय तकमे पहनानेवाले चपरासियों के भय से लोग घबड़ा उठे थे। शचीश के पिता हरिमोहन ने सोचा, कि उनके पड़ोसी चमारों को सबसे पहले पकड़ेगा, साथ ही उनके परिवार के भी सभी लोगों का मरण निश्चित है। मकान छोड़कर भाग जाने के पहले उन्होंने एक बार अपने भैया से जाकर कहा—भैया, कलकत्ता में गङ्गाजी के किनारे एक मकान लिया है, यदि—

जगमोहन ने कहा—बहुत अच्छा। इन लोगों को छोड़कर कैसे चला जाऊँ?

किन लोगों को !

इन्हीं चमारों को।

हरिमोहन मुंह टेढ़ा करके चले गये। शचीश के मेस में जाकर उन्होंने उससे कहा—चल !

शचीश ने कहा—मुझे काम है !

मुहल्ले के चमारों की मुर्दाफरोशी का काम !

जी हाँ, यदि जरूरत पड़ गयी तो—

जी हां, और क्या ! यदि जरूरत पड़ गयी तो तुम अपनी चौदह पुश्त तक के लोगों को नरक में भी डाल सकते हो। बदमाश, नालायक, नास्तिक !

परिपूर्ण कलिकाल का लक्षण देखकर हरिमोहन निराश होकर घर लौट आये। उस दिन उन्होंने छोटे-छोटे अक्षरों में दुर्गा नाम लिखकर एक दिस्ता कागज भरकर रख दिया।

हरिमोहन चले गये। मुहल्ले में प्लेग आ गया। कहीं कोई सरकारी आदमी पकड़कर अस्पताल में न ले जाय, इस भय से लोगों ने डाक्टर को बुलाना नहीं चाहा। जगमोहन ने स्वयं प्लेग का अस्पताल देख आने के बाद कहा—बीमारी फैली हुई है, इसलिये मनुष्य ने तो कोई अपराध नहीं किया है।

उन्होंने चेष्टा करके अपने मकान पर प्राइवेट अस्पताल खोल दिया। शचीश के साथ हमलोग दो चार सेवा व्रतधारी थे। हमलोगों के हाथ में एक डाक्टर भी थे।

हम लोगों के अस्पताल में पहला रोगी एक मुसलमान आया, वह मर गया। द्वितीय रोगी थे स्वयं जगमोहन, वे भी नहीं बचे। शचीश से उन्होंने कहा—चिरकाल से जिस धर्म को मानता आया हूँ, आज उसका अन्तिम पुरस्कार चुका लिया—कोई खेद मन में नहीं रह गया।

शचीश ने अपने जीवन में कभी अपने वड़े चाचा को प्रणाम नहीं किया था, मृत्यु के बाद आज प्रथम और अन्तिम बार के लिये उनके चरणों की धूलि मस्तक से लगायी।

इसके बाद शचीश के साथ जब हरिमोहन की मुलाकत हुई, उन्होंने कहा, नास्तिक की मृत्यु इसी तरह होती है ?

शचीश ने गर्व के साथ कहा—हाँ।

—*—

२

एक फूँक से दीपक बुझ जाने से उसका प्रकाश जिस तरह एकाएक लुप्त हो जाता है, उसी तरह जगमोहन की मृत्यु के बाद शचीश कहाँ चला गया, यह मैं जान ही न सका।

बड़े चाचा को शचीश कितना प्यार करता था, इसकी कल्पना तक भी हमलोग नहीं कर सकते। वे शचीश के बाप थे, मित्र थे, इसके अतिरिक्त उसके लड़के भी थे, ऐसा कहा भी जा सकता है। क्योंकि अपने सम्बन्ध में वे इतने भोलेभाले और सांसारिक बातों में इतने नासमझ थे कि उनको सभी कठिनाइयों से बचा कर चलना शचीश का एक प्रधान काम था। इसी प्रकार बड़े चाचा के भीतर से ही शचीश ने अपना जो कुछ है वह प्राप्त किया है और उनके अन्दर से ही उसने अपना जो कुछ है वह प्रदान किया है। उसके साथ विच्छेदशून्यता पहले-पहल शचीश को किस तरह खलने लगी थी, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। उस असहनीय यन्त्रणा के फलस्वरूप शचीश ने केवल यही समझने की चेष्टा की थी कि शून्य, इतना शून्य कभी

नहीं हो सकता। जाने नहीं है, ऐसी भयङ्कर शून्यता कहीं भी नहीं है। एक प्रकार से जो 'नहीं' है वही यदि दूसरे प्रकार से 'हाँ' हो जाता तो उसी छिद्र से सारा संसार फिसलकर समाप्त हो जायगा।

दो साल तक शचीश लगातार देश-देशान्तर में घूमता रहा। उसका कुछ भी पता मुझे नहीं लगा। अपने दल को लेकर हमलोग और भी ज़ोर-शोर से अपना काम चलाने लगे। जो लोग धर्म का नाम लेकर किसी न किसी बात को मानते हैं उनको जबरन छेड़कर हमलोग और भी परेशान करने लगे, और चुन-चुनकर ऐसे सब भले कामों में लग गये। देश भर के भले आदमियों के लड़के हमलोगों को अच्छी बात न कह सके। शचीश था हमलोगों का फूल, वह जब टूट गया, तब हमलोगों के काँटे बिलकुल उग्र और उत्कट हो उठे।

* — * — *

३

दो वर्ष तक शचीश का कुछ भी समाचार नहीं मिला। शचीश की ज़रा भी निन्दा करने की मन में इच्छा नहीं होती। किन्तु मन ही मन इस बात को सोचे बिना मैं न रह सका कि जिस सुर में शचीश बँधा हुआ था, एकाएक इस झटके को खा लेने के कारण वह तो उतर गया है। एक सन्यासी को देखकर एक बार बड़े चाचा ने कहा था, संसार मनुष्य को सरौते की तरह ठोंक-ठाककर ग्रहण करता है, शोक की चोट, चोट और भक्ति के प्रलोभन की चोट लग जाने से?

दुर्बल हो जाता है, सर्राफ उन्हें खींचकर फेंक देता है, ये वैरागी लोग भी फेंक दिये गये खोटे रुपये की तरह हैं। जीवन के कारबार में अचल हैं, फिर भी ये लोग ठाट-बाट से घूमते हुए यह दिखलाते हैं मानों इन्हीं लोगों ने ही संसार त्याग किया है। जिसमें कुछ भी योग्यता है उसके लिए संसार से जरा भी खिसकने की गुंजाइश नहीं है, सूखी हुई पत्ती पेड़ों से झरकर गिर जाती है, पेड़ ही उसे खुद गिरा देता है—इसी कारण वह कूड़े में शामिल मान ली जाती है।

इतने लोगों के रहते हुए शचीश क्या अन्त में उसी कूड़े के ढेर में जा पड़ा है? शोक की काली कसौटी पर क्या यह बात लिखी जा चुकी है कि जीवन के बाजार में शचीश का कुछ भी मूल्य नहीं है।

ऐसे ही समय में सुना गया कि चटगाँव के पास किसी जगह पर शचीश—हमारा शचीश,—लीलानन्द स्वामी के साथ कीर्तन में मतवाला होकर करताल बजाता हुआ मुहल्ले में ऊधम मचाकर नाचता हुआ घूम रहा है।

एक दिन किसी तरह भी कल्पना में यह बात नहीं लायी जा सकती थी कि, शचीश जैसा मनुष्य किसी भी हालत में नास्तिक हो सकता है। आज किसी प्रकार भी मैं न समझ सका की लीलानन्द स्वामी कैसे इस तरह अपने साथ उसे नचाता हुआ घूम रहा है।

इधर हम लोग मुँह दिखावें तो कैसे? शत्रुओं का दल हँसने लगेगा। शत्रुओं की संख्या भी तो एक दो नहीं है।

अपने दल के लोग शचीश पर बहुत ही बिगड़ उठे। बहुतों ने कहा कि उन्हें पहले से ही स्पष्ट रूप से यह बात

मालूम थी कि शचीश में कोई भी वस्तु नहीं है, केवल खोखली भावुकता ही भरी हुई है।

शचीश को मैं कितना प्यार करता हूँ इस बार यह बात मेरी समझ में आ गयी। हमारे दल पर उसने इस प्रकार मृत्युबाण-सा प्रहार किया है, फिर भी किसी तरह मैं उसपर क्रोध न कर सका।

४

लीलानन्द स्वामी का पता लगाने के लिये मैं निकल पड़ा। कितनी नदियों को पार किया, मैदानों को रौंद डाला, मोदी की दूकान पर रात बिताये, अन्त में एक गाँव में पहुँचकर शचीश को पकड़ लिया। उस समय दिन के दो बजे रहे होंगे।

इच्छा थी कि शचीश को एकान्त में पाऊँ। किन्तु उपाय कौन-सा था! जिस शिष्य के घर पर स्वामी जी ने डेरा डाला था उसका दालान, आँगन सब ठसाठस भरा था। प्रातःकाल का कीर्तन समाप्त हो गया था, जो लोग दूर से आये थे उनके लिये भोजन का इन्तजाम हो रहा था।

मुझे देखते ही शचीश दौड़ता हुआ आया और आते ही मुझे अपनी छाती में दबा लिया। मैं आवाक् हो गया। शचीश चिरकाल से संयमी है, उसकी स्वच्छता से उसके हृदय की गम्भीरता का परिचय मिलता है। आज मुझे जान पड़ा कि शचीश नशे में है।

स्वामीजी कमरे में विश्राम कर रहे थे। कि

पलड़ा कुछ खुला था। मुझे उन्होंने देख लिया। गम्भीर कंठ से पुकार उठे—शचीश!

घबड़ाकर शचीश कमरे में चला गया। स्वामीजी ने पूछा—यह कौन है?

शचीश ने कहा—श्री विलास, मेरा मित्र।

उन्हीं दिनों लोक, समाज में मेरे नाम का एक प्रचार शुरू हो गया। मेरा अंग्रेजी भाषण सुनकर किसी अंग्रेजी विद्वान ने कहा था, यह मनुष्य ऐसा है कि—रहने दो, उन सब बातों को लिखकर निरर्थक शत्रुओं की वृद्धि न करूँगा। मैं जो भयङ्कर नास्तिक हूँ और प्रति घंटे में बीस-पचीस मील के वेग से, आश्चर्य-जनक रूप से अंग्रेजी बोली की चौकड़ी हांकता हुआ चल सकता हूँ, यह बात छात्र समाज से लेकर छात्रों के पितृ-समाज तक प्रचारित हो चुकी थी।

मुझे विश्वास है कि मेरा आना जानकर स्वामीजी खुश हुए। उन्होंने मुझे देखना चाहा। कमरे में घुसकर मैंने नमस्कार किया। उस नमस्कार में मेरे केवल दोनों हाथ खड्ग की भाँति मेरे ललाट के पास तक ऊपर उठे, माथा नीचे नहीं झुका। हम लोग बड़े चाचा के चेले हैं, हमारा नमस्कार गुणहीन धनुष की भांति नमो अंश को छोड़-कर विषम रूप से खड्ग-सा हो गया था।

स्वामीजी ने इसे लक्ष्य किया और शचीश से कहा—जरा तम्बाकू चढ़ा ले आओ तो शचीश!

शचीश तम्बाकू चढ़ाने लगा। उसकी टिकिया जैसे जैसे खतम होने लगी मैं भी उसी तरह लाल होने लगा। कहां बैठूं कुछ भी समझ में नहीं आया। असबाब जो कुछ है, उनमें उनकी एक चौकी है, उसी के ऊपर स्वामीजी का बिस्तर बिछा हुआ है। उसी बिस्तर के एक छोर पर बैठ जाना मैं अनुचित नहीं

समझता था, किन्तु नहीं मालूम किस कारण मुझसे ऐसा न हो सका।

देखा कि, स्वामी जी जानते हैं कि मैं रायचन्द प्रेमचन्द छात्रवृति वाला हूं। वे बोले, बच्चा, मोती चुनने के लिये गोता खोर समुद्र के तले तक जा पहुँचता है, किन्तु यदि वहीं पर जाकर टिक जाय तो फिर रक्षा कैसे हो सकती है। निष्कृति के लिये उपर उठकर उसे दम लेना ही पड़ता है। यदि बचाना चाहते हो बच्चा, तो इस बार विद्या समुद्र के तले से ऊपर उठाना ही पड़ेगा। प्रेमचन्द रायचन्द की निवृत्ति भी एक बार देख लो।

शचीश ने तम्बाकू चढ़ाकर स्वामीजी के हाथ में दे दिया और उनके पैरों की ओर जमीन पर बैठ गया। स्वामीजी ने उसे उसी समय शचीश की ओर अपने पैर बढ़ा दिये। शचीश धीरे धीरे उनके पैरों पर अपना हाथ फेरने लगा।

यह देखकर मेरे मन में इतनी बड़ी चोट लगी कि मैं उस कमरे में ठहर न सका। मैं समझ गया कि मुझपर विशेष रूप से चोट पहुँचाने की गरज से ही शचीश से यह तम्बाकू चढ़वाने और पैर दबवाने का कार्य कराया जा रहा है।

स्वामीजी विश्राम करने लगे, अभ्यागतों का खिचड़ी खाना समाप्त हो गया। पांच बजे से फिर कीर्तन शुरू हुआ और रात के दस बजे तक चलता रहा।

रात के समय शचीश अकेला मिला तो मैंने उससे कहा शचीश, जन्मकाल से ही तुम मुक्ति के बीच में ही मनुष्य बने हो, किन्तु आज तुमने किस बन्धन में अपने को जकड़ लिया है। बड़े नाचा की मृत्यु क्या इतनी बड़ी मृत्यु है?

मेरे नाम 'श्री विलास' के प्रथम दो अक्षरों को उलट कर शचीश कुछ तो स्नेह के कौतुक से और कुछ

गुणानुसार मुझे विश्री कहकर पुकारता था। उसने कहा—विश्री, जब वड़े चाचा जीवित थे तब उन्होंने जीवन के कर्मक्षेत्र में मुक्ति ' दी थी, जिस प्रकार छोटा बच्चा खेल कूद के आंगन में मुक्ति प्राप्त करता है। वड़े चाचा की मृत्यु हो जाने के वाद उन्होंने मुझे रस के समुद्र में मुक्ति दी है, जिस तरह छोटा वच्चा माता की गोद में मुक्ति प्राप्त करता है। दिन के समय की उस मुक्ति का तो मैंने उपभोग किया है, अब रात्रिकाल की इस मुक्ति को ही क्यों छोड़ दूँ? ये दोनों ही बातें उन्हीं मेरे चाचाजी की ही करतूत है, यह तुम पक्का समझ रखो।

मैंने कहा जो कुछ भी कहो, किन्तु यह तम्बाकू चढ़वाना, पैर दबवाना, यह सब उपसर्ग तो बड़े चाचाजी में नहीं थे—मुक्ति का यह स्वरूप नहीं है। शचीश ने कहा—वह तो तट के ऊपर की मुक्ति थी, उसी समय कार्यक्षेत्र में वड़े चाच ने मेरे हाथ पैर सबल कर दिये थे। और यह तो रस का समुद्र है, यहां तो नाव का बन्धन ही मुक्ति का मार्ग है। इसी कारण तो गुरूजी ने मुझे चारों ओर से सेवा के बीच ही अटका रखा है—मैं पैर दबाकर इसे पार कर रहा हूँ।

मैंने कहा—तुम्हारे मुँह से बात सुनने में बुरी नहीं लगती, किन्तु जो तुम्हारी तरफ इस तरह पैर बढ़ा दे सकते हैं वे—

शचीश वोला—उनको सेवा की जरूरत नहीं है, इसीलिए इस तरह पैर वढ़ा दे सकते हैं, यदि जरूरत रहती तो वे लज्जा अनुभव करते, जरूरत तो मुझको ही है।

समझ गया, शचीश एक ऐसे जगत में है जहाँ मैं बिलकुल ही नहीं हूँ। मुलाकात होते ही जिसको शचीश ने सीने से लगाकर जकड़ लिया था वह मैं था, श्री विलास नहीं, वह था मैं का 'सर्व-भूत' एक आइडिया।

इस तरह की आइडिया वस्तु मदिरा के समान है—नशे की विह्वलता में मतवाला जिसको-तिसको छाती से चकड़ कर आंसू बहा सकता है, तब मैं ही क्या हूँ और दूसरे ही क्या हैं। किन्तु इस तरह छाती से चकड़ लेने की क्रिया में मतवाले को जितना ही आनन्द क्यों न मिलता हो, मुझे तो नहीं है। मैं तो भेदज्ञान विलुप्त एकाकारता की बाढ़ का एक लहर मात्र भी होना नहीं चाहता—मैं तो मैं हूँ।

समझ लिया कि तर्क का काम नहीं है। किन्तु शचीश को छोड़ जाने की शक्ति मुझमें नहीं थी, शचीश के आकर्षण से इस दल के स्रोत में, मैं भी एक गांव से दूसरे गांव में बहता हुआ चक्कर काटने लगा। धीरे-धीरे नशा ने मुझपर भी अधिकार कर लिया, आंसू बहाया, गुरूजी का पैर दबाने लगा और एक दिन हठात्, किस एक आवेश में शचीश का कैसा एक अलौकिक स्वरुप देखा, जो विशेष किसी देवता में ही सम्भव हो सकता है।

—*—

५

हम लोगों की तरह इतने बड़े दो दुर्द्धर्ष अंग्रेजीदां नास्तिकों को अपने दल में जुटाकर लीलानन्दन स्वामी का नाम चारो तरफ फैल गया। कलकत्ता रहने वाले उनके भक्त लोग इस बार उनको शहर में आकर डेरा जमाने के लिये जिद करने लगे।

वे कलकत्ते आ गये।

शिवतोष नाम का उनका एक परम भक्त शिष्य था। कलकत्ते में रहते समय स्वामी जी उसी के घर ठहरते थे—

समस्त दलबल के साथ उनकी सेवा करना ही उसके जीवन का प्रधान आनन्द था।

मरते समय वह अपनी युवती तथा सन्तानहीन स्त्री को जीवन निर्वाह के लिये कुछ देर तक कलकत्ते वाला अपना मकान दे गया था और शेष सम्पत्ति गुरु को दे गया। उसकी इच्छा थी कि कालक्रम से यही मकान उनके सम्प्रदाय का प्रधान तीर्थ स्थान बन जाय। इसी मकान में आकर ठहर गया।

गांव-गांव में जब तन्मय होकर घूम रहा था, उस समय एक प्रकार के भाव में था, कलकत्ते में आकर उस नशे को जमा रखना मेरे लिये कठिन हो गया।

इतने दिन मैं रस के राज्य में था। वहां विश्वव्यापिनी नारी के साथ चित्तव्यापी पुरुष की प्रेमलीला चलती थी। गांव के चरागाह का मैदान, खेवाघाट के वट वृक्ष की छाया, अवकाश के आवेश से भरा मध्यान्ह और झिल्लियों के रव से आकम्पित सन्ध्याकाल की निस्तब्धता, उसके ही स्वर से परिपूर्ण थी। मानों स्वप्न में चल रहा था। खुले आकाश में कहीं बाधा नहीं मिली—कठिन कलकत्ते में आकर मस्तक टकरा गया, मनुष्यों की भीड़ का धक्का खा गया—खुमारी टूट गयी। किसी दिन मैंने इसी कलकत्ते के मेस में दिन-रात साधना करके पढ़ना सम्पन्न किया है, गोलदीघी में मित्रों के साथ मिलकर देश की समस्याओं पर विचार किया है, राजनीतिक सम्मेलनों में स्वयंसेवक बनकर काम किया है। पुलिस का अन्याय, अत्याचार दूर करने की चेष्टा में जेल जाने की नौबत का सामना किया है, यहीं पर बड़े चाचा की पुकार पर, हाजिर होकर व्रत धारण किया है कि समाज की डकैतियों को प्राणों की बाजी लगाकर हटाऊँगा, सब तरह की गुलामियों का जाल काटकर देश वासियों

के मन को स्वतन्त्र करूँगा, फलतः यहाँ के लोगों के बीच से, अपने-पराये, परिचित-अपरिचित सभी की गालियाँ खाते-खाते पालवाली नाव जिस तरह उल्टी धारा में छाती फुलाकर चली जाती है, यौवन के आरम्भ से आजतक उसी तरह चला आया हूँ। भूख-प्यास, सुख-दुःख, भलाई-बुराई की विचित्र समस्याओं में चक्कर खाए हुए मनुष्यों के बीच से मेरे उसी कलकत्ते में, अश्रुवाष्पाकुल रस की विह्वलता को जगा रखने के लिए प्राण-पण से चेष्टा करने लगा। बाद में यह ख्याल आने लगा कि मैं दुर्बल हूँ, मैं अपराध कर रहा हूँ, मेरी साधना में बल नहीं है। शचीश की ओर गौर से देखता हूँ तो यह कलकत्ता शहर दुनिया के भूवृत्तान्त में किसी जगह है, इसका कोई भी चिन्ह उसके मुँहपर नहीं है, उसके लिए यह सब छाया है।

६

शिवतोष के घर पर हम दोनों मित्र मिलकर गुरुजी के साथ ही रहने लगे। हमलोग ही उनके प्रधान शिष्य हैं। हम लोगों को वे कभी अपने पास हटने देना नहीं चाहते।

गुरुजी को लेकर, गुरुभाइयों को लेकर, दिन-रात रस और रसतत्व की आलोचना चलने लगी। इन सब दुर्गम गम्भीर बातों के बीच में एकाएक कभी-कभी अन्दर महल से एक लड़की के गले की ऊंची हँसी आ पहुँचती थी। कभी-कभी एक ऊँची आवाज की पुकार सुनता—'बाम !' हम लोगों ने भावना के जिस आकाश पर अपने मन को टिका रखा था, उसके

समस्त दलबल के साथ उनकी सेवा करना ही उसके जीवन का प्रधान आनन्द था।

मरते समय वह अपनी युवती तथा सन्तानहीन स्त्री को जीवन निर्वाह के लिये कुछ देर तक कलकत्ते वाला अपना मकान दे गया था और शेष सम्पत्ति गुरु को दे गया। उसकी इच्छा थी कि कालक्रम से यही मकान उनके सम्प्रदाय का प्रधान तीर्थ स्थान बन जाय। इसी मकान में आकर ठहर गया।

गांव-गांव में जब तन्मय होकर घूम रहा था, उस समय एक प्रकार के भाव में था, कलकत्ते में आकर उस नशे को जमा रखना मेरे लिये कठिन हो गया।

इतने दिन मैं रस के राज्य में था। वहां विश्वव्यापिनी नारी के साथ चित्तव्यापी पुरुष की प्रेमलीला चलती थी। गांव के चरागाह का मैदान, खेवाघाट के वट वृक्ष की छाया, अवकाश के आवेश से भरा मध्यान्ह और झिल्लियों के रव से आकम्पित सन्ध्याकाल की निस्तब्धता, उसके ही स्वर से परिपूर्ण थी। मानो स्वप्न में चल रहा था। खुले आकाश में कहीं बाधा नहीं मिली—कठिन कलकत्ते में आकर मस्तक टकरा गया, मनुष्यों की भीड़ का धक्का खा गया—खुमारी टूट गयी। किसी दिन मैंने इसी कलकत्ते के मेस में दिन-रात साधना करके पढ़ना सम्पन्न किया है, गोलदीघी में मित्रों के साथ मिलकर देश की समस्याओं पर विचार किया है, राजनीतिक सम्मेलनों में स्वयं-सेवक बनकर काम किया है। पुलिस का अन्याय, अत्याचार दूर करने की चेष्टा में जेल जाने की नौबत का सामना किया है, यहीं पर बड़े चाचा की पुकार पर, हाजिर होकर व्रत धारण किया है कि समाज की डकैतियों को प्राणों की बाजी लगाकर हटाऊँगा, सब तरह की गुलामियों का जाल काटकर देश वासियों

यह सब अत्यन्त तुच्छ है—किन्तु एकाएक मालूम पड़ता मानो अनावृष्टि के बीच झर-झर करती हुई एक हो गई। हमलोगों की दीवाल के पास के दृश्यलोक से, फूलों की छिन्न पपड़ियों की तरह जीवन के छोटे-छोटे परिचय जब हमलोगों को स्पर्श कर जाते, तब मैं क्षण भर के लिए समझता कि रस का लोक तो वहीं पर है, जहां उस 'वामी' के आंचल में घर -गृहस्थीवाली चाभियों का गुच्छा बज उठता है—जहां रसोईघर से रसोई की गन्ध रहती है—जहाँ घर में झाड़ू लगाने का शब्द सुनाई पड़ता है—जहां सब में तुच्छ है किन्तु सब सत्य है, जहां सब मधुर तीखे, मोटे-पतले, एक साथ मिले हुए हैं, वहां पर रस का स्वर्ग है।

विधवा का नाम था दामिनी। उसकी आड़-ओट में कभी कभी अचानक देख पाता था। हम दोनों मित्र गुरु जी के इतने एकात्म थे कि थोड़े ही दिनों में हमलोगों से दामिनी की आड़ ओट नहीं रह गयी।

दामिनी मानों सावन के बादलों के बीच की दामिनी है। बाहर से पुंज-पुंज यौवन से वह परिपूर्ण है और अन्दर से चंचल अग्नि की तरह झिलमिल करती हुई चमक उठती है।

शचीश की डायरी में एक स्थान पर लिखा हुआ है—ननीबाला में मैंने नारी का एक विश्वरूप देखा है—अपवित्रता के कलंक को जिस नारी ने अपने में ग्रहण किया, पापी के लिए उस नारी ने मरकर जीवन के सुधापात्र का पूर्णतर कर दिया। दामिनी में मैंने नारी का एक और ही विश्वरूप देखा है, वह नारी मृत्यु की कोई नहीं है, जीवन रस की रसिक है। वसन्त की पुष्पवाटिका की भांति लावण्य, गन्ध और हिल्लोल से वह केवल परिपूर्ण होती जा रही है, वह साधु सन्यासी को घर में

जगह देने में नाराज है, वह उत्तरी हवा को एक दमड़ी भी कर न देगी, ऐसी ही प्रतिज्ञा करके बैठी है।

दामिनी के सम्बन्ध में पहले शुरू की बात बता दूँ। पाट के रोजगार में एक दिन जब उसके बाप अन्नदा प्रसाद का कोप एका एक मुनाफे की अचानक बाढ़ से उमड़ उठा, उसी समय शिवतोष से दामिनी का विवाह हुआ। इतने दिनों तक केवल शिवतोष की कुल की मर्यादा ही अच्छी थी, अब उसका समय भ अच्छा हो गया। अन्नदा ने दामाद को कलकत्ते में एक मकान और जिसमें खाने-पीने का कोई कष्ट न हो ऐसा एक बन्दोबस्त कर दिया। इसके अतिरिक्त अलंकार आदि भी कम नहीं दिये।

उन्होंने शिवतोष को अपने दफ्तर में काम सिखाने की बहुत ही चेष्टा की थी, किन्तु शिवतोष का मन सांसारिक बातों में नहीं था। एक ज्योतिषी ने उसे एक दिन कह दिया था कि किसी एक विशेष योग में, बृहस्पति की किसी एक विशेष दृष्टि से वह जीवन्मुक्त हो जायगा। उसी दिन से जीवन्मुक्ति की प्रत्याशा में वह कान्चन और अन्य रमणीक पदार्थों का लोभ परित्याग करने बैठ गया। इसी बीच उसने लीलानन्दन स्वामी से दीक्षा ले ली।

इधर रोजगार को उलटी हवा झोंका खाकर अन्नदा की भरी भाग्य नौका एकदम लुढ़क गयी। अब तो घर द्वार सब बिक जाने से पेट चलाना कठिन हो गया है।

एक दिन शिवतोष ने शाम को घर में आकर अपनी स्त्री से कहा—स्वामी जी आये हैं, वे तुमको बुला रहे हैं, कुछ उपदेश देंगे। दामिनी ने कहा—नहीं, अभी मैं न जा सकूँगी। मेरे पास समय नहीं है।

समय नहीं है! शिवतोष ने पास आकर देखा, दामिनी अन्धकार पूर्ण घर में बैठकर गहने का बक्स खोलकर गहने

बाहर निकाल रही है। पूछा, यह क्या कर रही हो ? दामिनी ने कहा—मैं गहना सम्हाल कर रख रही हूँ ?

इसीलिए समय नहीं है ? खूब ? दूसरे दिन दामिनी ने लोहे की सन्दूक खोलकर देखा कि उसके गहने का बक्स नहीं है। अपने पति से पूछा—मेरा गहना ! पति ने कहा—उसे तो तुमने अपने गुरु को चढ़ा दिया है। इसीलिये ही उन्हों ने ठीक उसी समय तुमको बुलाया था, वे तो अन्तर्यामी हैं, उन्होने तुम्हारे कांचन-लोभ को हरण कर लिया है।

दामिमी ने आग बबूला होकर कहा—मेरा गहना दे दो !

पति ने पूछा, क्यो क्या करोगी। दामिनी ने कहा—मेरे बाबूजी का दिया हुआ है। मैं उसे अपने बाबूजी को दूँगी।

शिवतोष ने कहा—उससे कहीं अच्छी जगह में वह चला गया है। विषयी का पेट न भरकर भक्त की सेवा में उसका उत्सर्ग हो गया है।

इसी तरह से भक्ति की डकैती शुरू हुई। जोर जबर्दस्ती से दामिनी के मन से सब तरह की वासनाओं का भूत झाड़ने के लिये पग-पग पर ओझाओं का उत्पात चलने लगा। जिस समय दामिनी के बाप और उसके छोटे-छोटे भाई उपवास से मर रहे थे, उस समय घर में प्रतिदिन साठ-सत्तर भक्तों की सेवा का उसे अपने ही हाथों से तैयार करना पड़ा है। जान-बूझकर उसने तरकारी में नमक नहीं डाला, और जान-बूझकर दूध गिरा दिया, फिर भी उनकी तपस्या इसी प्रकार चलती रही।

ऐसे ही समय में उसका पति, मरते समय पति की भक्तिहीनता का अन्तिम दण्ड दे गया। समस्त सम्पत्ति के साथ स्त्री को विशेषरूप से गुरु के हाथों में सौंप दिया।

——*

दामिनी को और भी अधिक असत्य मालूम होने लगी, क्योंकि यह तो शासन-नियंत्रण का ही नामान्तर है। दामिनी के साथ व्यवहार में, गुरुजी अतिरिक्त रूप से जो मधुरता प्रकट कर रहे थे, उसके सम्बन्ध में एक दिन अचानक ही उन्होंने सुना कि दामिनी अपनी किसी संगिनी से उन्हीं की ही नकल करके हँस रही है।

फिर भी वे लोग — जो होनहार है, वह होकर ही रहेगा और उसे दिखाने के लिये ही दामिनी विधाता के लिए उपलक्ष बनकर मौजूद है। उस बेचारी का दोष नहीं है।

पहले पहल आकर कुछ दिनों तक हम लोगों ने दामिनी की यह अवस्था देखी थी। इसके बाद जो होनहार था, होना शुरू हुआ।

और लिखने की इच्छा नहीं होती—लिखना भी कठिन है। जीवन के परदे की ओट में अदृश्य हाथ से वेदना के जिस जाल की बुनाई होती रहती है उसका नकशा किसी शास्त्र का नहीं होता, किसी पैमाइश का नहीं होता—इसीलिये तो बाहर भीतर बेमेल होकर इतनी चोट खानी पड़ती है, इतनी रूलाई फूट पड़ती है।

विद्रोह का कर्कश आवरण किस प्रभात के आलोक में चुप-चाप एकदम टुकड़े-टुकड़े होकर फट गया, इसे कोई जान न सका। आत्मोत्सर्ग के फूल ने शिशिर भरे मुँह को ऊपर की ओर उठा दिया। दामिनी की सेवा अब इतनी सरलता से, इतनी सुन्दर हो उठी कि उसकी मधुरता से भक्तों की साधना के ऊपर मानो भक्तवत्सल का कोई विशेष वरदान आ पहुँचा।

इसी प्रकार दामिनी जिस समय स्थिर सौदमिनी होती जा

रही थी, शचीश उसकी शोभा देखने लगा। किन्तु मैं कह रहा हूं कि शचीश ने केवल उसकी शोभा को देखा, दामिनी को नहीं।

शचीश के बैठकखाने में चीनी मिट्टी की एक तस्वीर पर लीलानन्दन स्वामी की ध्यानमूर्ति का एक फोटोग्राफ था। एक दिन उसने देखा कि वह टूटकर फर्श पर टुकड़े-टुकड़े होकर पड़ी है। शचीश ने सोचा, उसकी पाली हुई बिल्ली ने यह काण्ड किया है। बीच-बीच में और ऐसे ही अनेक उपसर्ग दिखाई पड़ने लगे जो जंगली बिल्ली के लिए भी असाध्य है।

चारों तरफ के आकाश में एक चंचलता की हवा बह चली। एक अदृश्य बिजली अन्दर ही अन्दर चमकने लगी। दूसरों की बात नहीं जानता, अतएव व्यथा से मेरा मन घबड़ाने लगता। कभी-कभी सोचने लगता। दिन रात का यह रसतरंग मुझसे सहा नहीं गया—मैं सोचने लगा, इसके बीच से एक बारगी एक ही दौड़ में भाग जाऊंगा—वह जो चमारों के लड़कों को साथ लेकर सब प्रकार के रसों से वर्जित बंगला वर्णमाला के संयुक्ताक्षरों के विषय में आलोचना चलती थी, वही बल्कि मेरे लिए अच्छी थी।

एक दिन जाड़े की दुपहरिया में जब गुरू जी विश्राम कर रहे थे और भक्त लोग थके मांदे थे, शचीश ने किसी कारण से असमय में ही अपने सोने के कमरे में प्रवेश किया, किन्तु एकदम भीतर न जाकर चौंककर चौखट के पास ही खड़ा हो गया। देखा कि दामिनी अपनी केशराशी बिखरा कर जमीन पर झुकी हुई है और फर्श पर अपना माथा पटक रही है, साथ ही साथ कह रही है—पत्थर, हे मेरे पत्थर, हे मेरे पत्थर के देवता, दया करो मुझे मार डालो।

भय के मारे शचीश का समूचा शरीर कांप उठा। वह द्रुतगति से लौट गया।

★

८

गुरुजी प्रतिवर्ष एक बार किसी दुर्लभ एकान्त स्थान में भ्रमण के लिए जाया करते थे। माघ के महीने में इस वर्ष भी उनका वही समय आ गया है। शचीश ने कहा, मैं भी साथ चलूंगा।

मैंने कहा, मैं भी चलूंगा। रस की उत्तेजना से मेरी मज्जा मज्जा एकदम जीर्ण हो गई थी! कुछ दिनों के लिये भ्रमण का क्लेश और निर्जन स्थान का वास मेरे लिए नितान्त आवश्यक था।

स्वामीजी ने दामिनी को बुलाकर कहा, वेटी, मैं भ्रमण के लिये बाहर जाऊंगा। पहले ऐसे समय में जिस तरह तुम अपनी मौसी के घर जाकर रहती थीं, इस बार भी उसी तरह का इन्तजाम कर देता हूँ।

दामिनी ने कहा, मैं तुम्हारे साथ चलूंगी।

स्वामीजी ने कहा, तुम कैसे चल सकोगी? वह बहुत ही कठिन रास्ता है।

दामिनी ने कहा, सकूंगी! मेरे लिए सोचने की जरूरत न पड़ेगी।

स्वामीजी दामिनी की इस निष्ठा से प्रसन्न हुए। और वर्षों में ठीक यही समय दामिनी के छुट्टी का रहता, साल भर इसी के लिए उसका मन बाट जोहता रहता। स्वामीजी ने

सोचा—यह कैसा अलौकिक काण्ड है! भगवान के रस का रसायन, पत्थर को पिघला कर नवनीत कैसे बना देता है!

किसी तरह भी जिद नहीं छोड़ा, आखिर दामिनी भी साथ गयी।

६

उस दिन प्रायः छः घंटे धूप में पैदल चलकर हमलोग जिस जगह पर जा पहुँचे थे, वह समुद्र के बीच का एक अन्तरीप था। एकदम विजन निस्तब्ध। नारियल वन के पल्लव के साथ शान्त समुद्र का अलस कल्लोल मिल रहा था। ऐसा मालूम हुआ मानों नींद के आवेश में पृथ्वी का एक थका हुआ हाथ, समुद्र के ऊपर फैलकर पड़ा हुआ है। उस हाथ की हथेली पर एक नीले रंग का छोटा सा पहाड़ है। पहाड़ की दीवार में बहुत दिनों की खुदी हुई एक गुफा है। वह बौद्धों की है या हिन्दुओं की, उसकी दीवार में जो सब मूर्तियाँ हैं, वे बुद्ध की हैं या वासुदेव की, उसकी शिल्प कला में यूनानी प्रभाव है या नहीं—इस विषय को लेकर विद्वानों में गहरी अशान्ती का कारण उत्पन्न हो चुका है।

यह बात तय थी कि गुफा देखकर हमलोग बस्ती में लौट आयेंगे। किन्तु यह सम्भावना अब नहीं रही। उस समय दिन बीत चुका था, कृष्णपक्ष की द्वादशी तिथी थी। गुरुजी ने कहा, आज इस गुफा में ही रात बितानी पड़ेगी।

हम तीनों समुद्र के किनारे बालू पर बैठ गये। समुद्र पश्चिमी छोर पर आसन्न अन्धकार के सामने सूर्यास्त, दि

अन्तिम नमस्कार की भाँति झुक पड़ा। गुरुजी ने गाना शुरू किया, आधुनिक कविका गान उनको भाता है।

पथ में तुमसे मिलन हुआ
इस दिवस के ही अवसान में।
देखते ही में सन्ध्या ज्योति
लीन हो गई अन्धकार में।

उस दिन गाना खूब जम गया था। दामिनी की आँखों से आँसू झरने लगा। स्वामीजी ने अन्तरा पकड़ी—

दर्शन पाऊँ न भी पाऊँ
शोक नहीं कुछ मेरे मन में।
खड़े रहो क्षण मात्र भी
चरण लपेटूँ केश जाल से।

स्वामीजी जब चुप हो गये तब आकाशव्यापी—समुद्रव्यापी सन्ध्या की स्तब्धता, नीरव सुर के रस से एक सुनहले रंग के पके फल की तरह भर उठी। दामिनी ने सिर झुकाकर प्रणाम किया —बहुत देर तक सिर ऊपर नहीं उठाया। उसके बाल बिखर कर जमीन पर लोट रहे थे।

——

१०

शचीश की डायरी में लिखा है:—

'गुहा में बहुत से कमरे हैं। मैं उनमें से एक में कम्बल बिछाकर सो रहा।

उस गुहा का अन्धकार मानो एक काले जन्तु-सा मालूम हो

रहा था—उसकी भींगी हुई सांस मानों मेरे शरीर को छू रही थी। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि वह आदिम काल की प्रथम सृष्टि का प्रथम जन्तु है, उसकी आँखें नहीं हैं, उसके कान नहीं हैं, उसको केवल एक बहुत बड़ी भूख लगी है, वह अनन्त काल के लिये इस गुफा का बन्दी है, उसके पास मन नहीं है,—वह कुछ भी नहीं जानता, उसको केवल व्यथा है—वह चुपचाप रोया करता है।

थकावट ने एक बोझ की भांति मेरे शरीर को दबा रखा, किन्तु किसी तरह भी नींद नहीं आयी। कोई एक पक्षी—शायद चमगादड़ ही था—भीतर से बाहर, फिर बाहर से भीतर झपाझप डैने की आवाज करता हुआ अन्धकार में चला गया। मेरे शरीर में उसकी हवा लगने से सारे शरीर के रोएँ काँटे की तरह खड़े हो गये।

मन में सोच लिया कि बाहर जाकर सोऊँगा। पर गुफा का दरवाजा किधर है इसकी याद नहीं रही। सिर झुकाकर एक तरफ चलने की चेष्टा करने लगा तो माथा टकरा गया, दूसरी तरफ जाने लगा तो उधर भी टक्कर लगा, फिर तीसरी तरफ चला तो एक छोटे से गड्ढे में जा गिरा। वहीं पर गुफा के दरार से पानी चूकर जमा हो गया था।

अन्त में लौट आया और कंबल पर लेट गया। मालूम हुआ कि उस आदिम जन्तु ने अपने लार से भींगे हुए पंजे में जकड़ रखा है, किसी तरफ से निकल जाने का कोई रास्ता ही मेरे लिये नहीं रह गया है। यह केवल एक काली क्षुधा है, यह मुझे केवल धीरे-धीरे चाटती रहेगी और शरीर को क्षीण कर डालेगी। इसका रस जारक रस है, जो चुपके से जीर्ण कर डालता है।

किसी तरह नींद आ जाने से मैं बच जा[illegible]

चेतना इतने बड़े सर्वसंहार अन्धकार के निविड़ आलिंगन को सह नहीं सकती, इसे केवल मृत्यु ही सह सकती है।

मालूम नहीं कितनी देर बाद—शायद वह वास्तविक निद्रा नहीं थी—अवसन्नता की एक पतली चादर का परदा मेरी चेतना के ऊपर पड़ गया। एक बार उस निद्रा के आवेश में मैंने अपने पैर के निकट एक फन के निश्वास का अनुभव किया। भय से मेरा शरीर ठंढा हो गया। वही आदिम जानवर!

उसके बाद किसी ने मेरा पैर जकड़ लिया। पहले मैंने सोचा कि कोई जंगली जानवर होगा। किन्तु उसके शरीर में तो रोएँ होते हैं—इसको तो रोएँ नहीं हैं। मेरा समूचा शरीर मानों सिकुड़ गया। जान पड़ा कि सांप की तरह कोई जानवर है, जिसको मैं नहीं पहचानता। उसका सिर कैसा है, शरीर कैसा है, उसकी पूंछ कैसी है मैं नहीं जानता—उसके ग्रास करने की प्रणाली कैसी है यह मैं समझ नहीं सका। यह इतना नरम है इस लिये इतना भयानक है, वही क्षुधा का पुंज!

भय और घृणा से मेरा गला रूँध गया। मैं अपने ,दोनों पैरों से उसे ढकेलने लगा। ऐसा जान पड़ा मानों उसने मेरे पैरों पर अपना मुंह रख दिया है—घन-घन सांस चल रही है, वह मुंह कैसा है मैं नहीं जानता। मैंने पैर झटकार-झटकार कर लात चलाया।

अन्त में मेरी तंद्रा टूट गयी। पहले मैंने सोचा था कि उसके शरीर में रोएं नहीं हैं किन्तु अकस्मात् अनुभव करने लगा कि मेरे पैरों पर एक राशि-केश आ पड़ा है। झटपट उठकर बैठ गया।

अन्धकार में कौन चला गया। कोई शब्द मानों सुनाई पड़ा। वह क्या दबी हुई रुलाई थी?

दामिनी

गुफा से हमलोग लौट आये। गांव में मन्दिर के पास गुरुजी के किसी शिष्य के मकान के दो मंजिले के कमरों में हमलोगों के रहने का इन्तजाम हुआ था।

गुफा से लौट आने के बाद से दामिनी और अधिक दिखलाई नहीं पड़ती। वह हमलोगों के लिये रसोई बनाकर परोस देती है लेकिन अब और सामना नहीं करती। उसने यहां के मुहल्ले की लड़कियों से मेल-जोल कर लिया है। सारा दिन उन्हीं लोगों के साथ, कभी उनके घर घूमा करती है।

गुरुजी कुछ नाराज हुए। उन्होंने देखा—मिट्टी के घर की ओर ही दामिनी का झुकाव अधिक है, आकाश की ओर नहीं। कुछ दिन तक जिस प्रकार वह देवता की पूजा की तरह हम लोगों की सेवा में लगी थी, अब उसमें क्लांति देख पाता हूँ, भूल होती है। काम में उसकी वह [illegible] और दिखलाई नहीं पड़ती।

चेतना इतने बड़े सर्वसंहार अन्धकार के निविड़ आलिंगन को सह नहीं सकती, इस केवल मृत्यु ही सह सकती है।

मालूम नहीं कितनी देर बाद—शायद वह वास्तविक निद्रा नहीं थी—अवसन्नता की एक पतली चादर का परदा मेरी चेतना के ऊपर पड़ गया। एक बार उस निद्रा के आवेश में मैंने अपने पैर के निकट एक फन के निश्वास का अनुभव किया। भय से मेरा शरीर ठंढा हो गया। वही आदिम जानवर!

उसके बाद किसी ने मेरा पैर जकड़ लिया। पहले मैंने सोचा कि कोई जंगली जानवर होगा। किन्तु उसके शरीर में तो रोएँ होते हैं—इसको तो रोएँ नहीं हैं। मेरा समूचा शरीर मानों सिकुड़ गया। जान पड़ा कि सांप की तरह कोई जानवर है, जिसको मैं नहीं पहचानता। उसका सिर कैसा है, शरीर कैसा है, उसकी पूंछ कैसी है मैं नहीं जानता—उसके ग्रास करने की प्रणाली कैसी है यह मैं समझ नहीं सका। यह इतना नरम है इस लिये इतना भयानक है, वही क्षुधा का पुंज!

भय और घृणा से मेरा गला रूँध गया। मैं अपने दोनों पैरों से उसे ढकेलने लगा। ऐसा जान पड़ा मानों उसने मेरे पैरों पर अपना मुंह रख दिया है—घन-घन सांस चल रही है, वह मुंह कैसा है मैं नहीं जानता। मैंने पैर झटकार-झटकार कर लात चलाया।

अन्त में मेरी तंद्रा टूट गयी। पहले मैंने सोचा था कि उसके शरीर में रोएं नहीं हैं किन्तु अकस्मात् अनुभव करने लगा कि मेरे पैरों पर एक राशि-केश आ पड़ा है। झटपट उठकर बैठ गया।

अन्धकार में कौन चला गया। कोई शब्द मानों सुनाई पड़ा। वह क्या दबी हुई रुलाई थी?

गुरुजी फिर से उससे मन ही मन भय करना शुरू कर दिया है। दामिनी की भौहों में कई दिनों से एक भृकुटि काली होती जा रही है और उसके मिजाज की हवा आजकल कुछ वैसे टेढ़े-मेढ़े वह रही है।

दामिनी के विस्तृत जूड़ायुक्त गरदन की ओर होठों के बीच में, आंखों के, कानों में और कभी-कभी हाथों के एक प्रकार के आक्षेप से एक कठोर अबाध्यता का इशारा दिखलाई पड़ता है।

फिर से गुरुजी ने गाने और कीर्तन में अधिक मन लगाया। उन्होंने सोचा, मीठी गंध का लोलुप भौरा आप ही आप लौटकर मधुकोष पर स्थिर होकर बैठ जायेगा। हेमंत के छोटे-छोटे दिन, गान के मद में फेनिल होकर मानों उमड़ उठे।

किन्तु ओह, दामिनी तो पकड़ में नहीं आती। गुरुजी ने इसे लक्ष्य करके एक दिन हंसते हुए कहा—भगवान शिकार करने के लिए बाहर निकले हैं, हरिणी भाग-भागकर इस शिकार के रस को और अधिक गाढ़ी बनाती जा रही है, किन्तु करना ही पड़ेगा।

पहले जब दामिनी के साथ हमलोगों का परिचय हुआ, तब वह भक्त मण्डली में प्रत्यक्ष नहीं थी, किन्तु इसका हम लोगों ने ख्याल नहीं किया। अब, वह जो नहीं है, यही हम लोगों के लिए प्रत्यक्ष हो उठा है। उसको न देख पाना ही झोंकेदार हवा की तरह हमलोगों को इधर-उधर ढकेलने लगा। गुरुजी ने उसकी अनुपस्थिति को अहंकार कहकर मान लिया है, इसलिए वह उनके अहंकार को केवल चोट पहुँचाने लगा—और मैं—मेरे बारे में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।

एक दिन साहस के साथ गुरुजी ने दामिनी से यथासम्भव मृदु मधुर स्वर में कहा—दामिनी, आज संध्या समय क्या तुमको कुछ फुरसत मिलेगी? यदि मिले तो...

गुरुजी ने उचककर देखा कि पिंजड़े में एक चील है। दो दिन हुए टेलीग्राफ के तार से किसी तरह चोट खाकर चील जमीन पर गिर पड़ी थी, वहां कौओं के दल के चोंच से उसका उद्धार करके दामिनी उसे ले आयी थी। उसके बाद से शुश्रूषा चल रही है।

यह तो हुई चील की बात, दामिनी ने इसके अलावा एक कुत्ते के बच्चे को भी पाल रखा है, उसका रूप जैसा है, कुलीनता भी उसकी वैसी ही है। वह एक मूर्तिमान रस भंग है। करताल की थोड़ी-सी आवाज सुनते ही वह आकाश की ओर मुंह उठाकर विधाता के पास आर्तस्वर में नालिश करने लगता है, उसकी नालिश को विधाता सुनते नहीं इसीसे कुशल है। किन्तु जो लोग सुनते हैं उनका धैर्य नहीं रहता।

एक दिन जब छत के एक कोने में फूटी हुई हांडी में दामिनी फूल के पौधे की सेवा कर रही थी, उसी अवसर पर शचीश ने उसके पास जाकर पूछा—आजकल तुमने वहां जाना एकदम छोड़ दिया है क्यों?

कहां?

गुरुजी के पास।

क्यों, तुम लोगों को मेरी क्या आवश्यकता है?

हम लोगों को कुछ आवश्यकता नहीं है, किन्तु तुमको तो आवश्यकता है।

दामिनी जल उठी और बोली—कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं।

शचीश स्तम्भित होकर उसके मुंह की तरफ देखने लगा। कुछ देर बाद बोला—देखो, तुम्हारा मन अशान्त हो उठा है, यदि शान्ति पाना चाहती हो तो—

तुम लोग मुझे शान्ति दोगे! दिन रात मन में केवल तरंगें उठा-उठाकर पागल बना बैठे हो। तुम लोगों को शान्ति कहाँ है! तुम लोगों से हाथ जोड़ती हूँ, मुझे क्षमा करो, मैं शान्ति में ही थी और शान्ति में ही रहूँगी।

शचीश ने कहा—ऊपर ही ऊपर तरंगें देख रही हो जरूर, धैर्य धारण करके डुबकी लगाने पर देखोगी कि वहाँ पूर्ण शान्ति है।

दामिनी ने दोनों हाथ जोड़कर कहा—अजी, तुम लोगों की दोहाई! मुझसे और डूबने के लिए मत कहो। मेरी आशा तुम लोग छोड़ दो, तभी बचूँगी।

३

नारी के हृदय का रहस्य जानने लायक भिज्ञता मुझे नहीं हुई। नितान्त ऊपर से और बाहर से जो कुछ देखा उससे मुझको यही विश्वास पैदा हुआ है कि जहाँ पर स्त्रियाँ दुख पाएँगी वहीं पर वे हृदय देने को तैयार रहती हैं। ऐसे पशु के लिये वे अपनी वरमाला गूँथती हैं जो उस माला को कामना के कीचड़ में रौंदकर वीभत्स कर दे और यदि ऐसा नहीं होता तो वे किसी ऐसे मनुष्य की ओर लक्ष्य करती हैं जिसके गले तक उनकी माला पहुँचती ही नहीं। जो मनुष्य भाव की सूक्ष्मता में इस तरह विलीन हो गया है मानों वह है ही नहीं। स्त्रियाँ स्वयम्वरा होते समय उनको ही वर्जन करती हैं जो हम लोगों में मध्यवर्ती मनुष्य हैं, जो स्थूलता और सूक्ष्मता को

एक में मिलाकर बने हैं, जो नारी को नारी ही कहकर जानते हैं अर्थात इतना ही जानते हैं कि वे मिट्टी की बनी खेलने की गुड़िया नहीं हैं और फिर सुर से बनी वीणा की झनकार भी नहीं हैं। स्त्रियाँ हम लोगों को त्याग देती हैं, क्योंकि हम लोगों में न तो लुब्ध लालसा का दुर्दान्त मोह है और न तो है विभोर भावुकता की रङ्गीन माया; हम लोग प्रकृति के कठिन पीड़न में उनको तोड़कर न तो फेंक ही सकते हैं और न तो भाव के उत्ताप में गलाकर अपनी कल्पना के सांचे में तैयार कर खड़ा करना ही जानते हैं, वे जो कुछ हैं हमलोग उनको वही जानते हैं—इसीलिए वे यद्यपि हमें पसन्द करती हैं किन्तु प्यार नहो कर सकतीं, हमींलोग उनके यथार्थ आश्रय हैं हम-लोगों की ही निष्ठा के ऊपर वे निर्भर रह सकती हैं, हमलोगों का आत्मोत्सर्ग इतना सरल है कि उसका कुछ मूल्य है इस बात को वे भूल ही जाती हैं। हमलोग उनके पास से केवल इतना ही बकसीस पाते हैं कि जरूत पड़ते ही वे हमलोगों को व्यवहार में लगती हैं, और हो सकता है कि वे हमारी श्रद्धा भी करती हों, लेकिन हम जानते हैं यह क्षोभ की बा हैं, खूब सम्भव है यह सभी सत्य भी न हों, पर जहाँ हम लोग कुछ नहीं पाते वहीं पर हमलोगों की जीत है, कम से कम यही बात कहकर अपने को हम सान्त्वना देते हैं।

दामिनी गुरुजी के पास आती नहीं इसीलिये कि उनके प्रति वह नाराज है। दामिनी शचीश की उपेक्षा ही करती चलती है, केवल इसलिये कि उसके प्रति उसके मन का भाव ठीक विप-रीत प्रकार का है। अब उसके नजदीक में ही एकमात्र ऐसा मनुष्य हूँ जिसे लेकर राग या अनुराग का कोई झंझट ही नहीं है। इसीलिये दामिनी मेरे निकट अपनी बीती हुई बातें, आज-

कल की बातें और मुहल्ले में कब, क्या देखा—क्या हुआ वही सब सामान्य बातें सुयोग पाते ही अनर्गल बक जाती है। हम लोगों के कमरे के सामने थोड़ी-सी ढंकी हुई जो छत है, वहीं पर बैठकर सरौते से सुपारी, काटते-काटते दामिनी जो-सो बकती है--पृथ्वी के बीच में यह जो अति सामान्य घटना है, यह आजकल शचीश की भावना में, भूली हुई नजर में, इस तरह पड़ेगी ऐसा मैं सोच भी न सकता था। हो सकता है कि सामान्य घटना न हो, लेकिन मैं जानता था कि शचीश जिस मुल्क में वास करता है वहां पर घटना कहकर कोई उपसर्ग ही नहीं है। वहां पर ह्लादिनी, सन्धिनी और योगमाया जो घटित कर रही हैं वह एक नित्य लीला है, अतः वह ऐतिहासिक नहीं है। वहां के चिर यमुना तीर के चिर धीर समीर की बांसुरी जो लोग सुन रहे हैं, वे जो आस-पास के अनित्य व्यापार को आंख से देखते हों या कान से सुनते हों एकाएक ऐसा ख्याल नहीं होता कम से कम गुफा से लौट आने के पहले शचीश के आंख और कान इनकी अपेक्षा बहुत कुछ बन्द थे।

मेरी भी कुछ त्रुटि हो रही थी। मैंने बीच-बीच में हमलोगों की रसालोचना की बैठक में गैरहाजिर रहना शुरू कर दिया था। यह शून्यता शचीश की पकड़ में आने लगी। एक दिन उसने आकर देखा कि ग्वाले के घर से एक हांड़ी दूध खरीद लाकर दामिनी के पालतू नेवले को पिलाने के लिए मैं उसके पीछे-पीछे दौड़ रहा हूँ। कैफियत की दृष्टि से यह काम बहुत ही अचल है, सभा भंग होने तक स्थगित रखने से नुकसान नहीं होता, यहाँ तक कि नेवले की क्षुधानिवृत्ति का भार स्वयं नेवले पर छोड़ देने से जीव के दया में कोई त्रुटि नहीं होती और न मैं अपनी रुचि का परिचय भी दे सकता। इसी कारण

एकाएक शचीश को देखकर घबड़ा उठना पड़ा। हांड़ी को उसी स्थान पर रखकर आत्म-मर्यादा के उद्धार के मार्ग में खिसक जाने की चेष्टा करने लगा।

किन्तु दामिनी का व्यवहार आश्चर्यजनक हुआ। वह जरा भी कुण्ठित नहीं हुई, बोली—कहां जा रहे हैं श्री विलास बाबू ?

मैं माथा खुजला कर बोला—एकबार—

दामिनी बोली—उन लोगों का गाना अब तक समाप्त हो गया होगा। आप बैठिये न।

शचीश के सम्मुख दामिनी का ऐसा अनुरोध सुनकर मेरे दोनों कान झनझनाने लगे।

दामिनी बोली, नेवेले को लेकर दिक्कत बढ़ गयी है—कल रात के समय मुहल्ले के मुसलमानों के घर से एक मुर्गी चुराकर भक्षण कर गया है। इसे खुला छोड़ रखने से न बनेगा। श्री विलाश बाबूको मैंने एक बड़ी टोकरी खरीद लाने को कहा है, तुमको उसी में बन्द करके रखना पड़ेगा।

नेवले को दूध पिलाना, नेवले के लिये टोकरी खरीद लाना आदि कामों के उपलक्ष्यमें श्रीविलास बाबू के सेवकाई का दामिनी ने मानो शचीश के निकट कुछ उत्साह के साथ ही प्रचार किया। जिस दिन गुरुजी ने मेरे सामने शचीश को तम्बाकू चढ़ाने को कहा था, उसदिन की बात मुझे याद पड़ गयी। दोनों एक ही चीज हैं।

शचीश कुछ भी न कहकर कुछ तेजी से चला गया। दामिनी के मुह की तरफ नजर उठाकर देखा, शचीश जिस तरफ चला गया उधर ताकते हुए उसकी आखों से बिजली छिटक पड़ी— वह मनही मन कठोर हँसी हँस पड़ी।

उसने क्या समझा यह तो वही जानती है, किन्तु अब यह

हुआ कि अत्यन्त साधारण बहाने से दामिनी मुझे तलब करने लगी। और एक-एक दिन कोई एक मिष्टान्न तैयार करके विशेष-रूप से वह मुझको ही खिलाने लगी। मैंने कहा, शचीश भैया को।

दामिनी ने कहा—उनको खाने के लिये बुलाना, तंग करना होगा।

शचीश बीच-बीच में देख गया कि मैं खाने लिये बैठा हूँ।

तीनों में से मेरी ही दशा सबसे खराब है। इस नाटक के जो दो मुख्य पात्र हैं उनके अभिनय का आगा पीछा ही एकदम आत्मगत है—मैं प्रकटरूप में हूँ, इसका एक मात्र कारण यह है कि मैं अत्यन्त गौण हूँ। इससे कभी-कभी अपने भाग्य के ऊपर क्रोध भी होता है' फिर भी उपलक्ष्य बनाकर जो कुछ नकद विदाई जुटती है उसका लोभ भी मैं सम्हाल नहीं सकता, ऐसी मुश्किल में भी पड़ गया हूँ।

३

कुछ दिनों तक शचीश पहले की अपेक्षा और भी अधिक उन्माद के साथ करताल बजाता हुआ और नाच-नाचकर कीर्तन करता हुआ घूमता रहा। इसके बाद एक दिन मेरे पास आकर वह बोला, दामिनी को हमलोगों के साथ रखने से काम न चलेगा।

मैंने कहा—क्यों ?

वह बोला, प्रकृति का संसर्ग हम लोगों को एकदम छोड़ देना पड़ेगा।

मैंने कहा—यदि ऐसा हो तो मैं यही समझूँगा कि हम लोगों की साधना में कोई बहुत बड़ी गलती है।

शचीश मेरे मुँह की तरफ आँखें उठाकर ताकने लगा।

मैंने कहा—तुम जिसको प्रकृति कहते हो वह तो एक यथार्थ वस्तु है, तुम्हारे अलग कर देने से भी वह संसार से तो अलग नहीं होती। अतएव, वह मानो है ही नहीं, इस तरह की भावना लेकर यदि साधना करते रहोगे तो अपने आपको धोखा देना ही होगा, किसी दिन वह धोखा इस तरह पकड़ा जायगा कि भाग निकलने का रास्ता न पाओगे।

शचिश ने कहा—न्याय का तर्क रहने दो। मैं तो काम की बात कह रहा हूँ। साफ तौर से ही दिखाई पड़ रहा है कि, स्त्रियाँ प्रकृति की अनुचारी हैं; प्रकृति का हुक्म तामिल करने के लिए ही तरह-तरह की सजावटों से सुसज्जि होकर वे मन को लुभाने की चेष्टा कर रही हैं। चेतना को आविष्ट न कर सकने से वे अपने मालिक का काम पूरा नहीं कर सकतीं, इसीलिए चेतना को खुलासा रखने के लिये प्रकृति की इन दूतिकाओं से जैसे भी हो सके बचकर चलना चाहिये।

मैं कुछ कहने ही जा रहा था कि बीच में ही रोककर शचीश बोला—भाई विश्री, प्रकृति की माया तुम नहीं देख पा रहे हो क्योंकि उसी माया के फन्दे में तुमने अपने आपको जकड़ रखा है। जिस सुन्दर रूप को दिखाकर आज उसने तुमको भुला रखा है, प्रयोजन का दिन समाप्त हो जाने पर ही वह अपने उस रूप के नकाब को उतार कर फेंक देगी। जिस तृष्णा के चश्मे से, तुम इस रूप को विश्व की समस्त वस्तुओं से बड़ा मानकर देख

रहे हो, समय बीतते ही वह उस तृष्णा को एकदम हो लुप्त कर देगी वहां पर मिथ्या का जाल इस तरह स्पष्ट फैलाया हुआ है, वहां बहादुरी करने के लिये जाने की क्या जरूरत है?

शचीश ने कहा—तुमलोग गुरु को नहीं मानते हो इसीलिये यह भी नहीं जानते कि गुरु ही हमलोगों के लिये पतवार हैं। साधना को अपने ख्याल के अनुसार गढ़ना चाहते हो। अन्तमें मरोगे।

यह बात कहकर शचीश गुरुजी के कमरे में चला गया और उनके पैरों के पास बैठकर पैर दबाने लगा। उसी दिन शचीश ने गुरुजी के लिये तम्बाकू चढ़ाकर दिया और उनके निकट प्रकृति के खिलाफ नालिश दायर कर दी।

एक दिन तम्बाकू से बात पूरी नहीं हुई। बहुत दिनों से लगातार गुरुजी ने अनेक चिन्ताएँ कीं। दामिनी को लेकर वे बहुत भुगत चुके हैं। अब देख रहे हैं कि इसी एक मात्र लड़की ने उनके भक्तों के अनवरत भक्तिस्रोत के बीच में खूब अच्छी तरह से एक भँवरी की सृष्टि कर दी है। किन्तु शिवतोष, घरद्वार-सम्पत्ति समेत दामिनी को उनके हाथों में इस तरह सौंप गया है कि उसको अब कहां हटावेंगे यही सोचना मुश्किल है। उससे कठिन यह है कि गुरुजी दामिनी से भय करते हैं।

इधर शचीश उत्साह की मात्रा को दुगुना चौगुना बढ़ाकर गुरुजी के पैर दबाकर, तम्बाकू चढ़ाकर किसी तरह भी यह बात न भूल सका कि प्रकृति उसकी साधना के पथ में खूब मजे से अड्डा जमाकर बैठी हुई है।

एक दिन मुहल्ले में गोविन्दजी के मन्दिर में एक हल नामी विदेशी कीर्तन वाले का कीर्तन हो रहा था। बैठक खतम होने में बहुत रात होगी। मैं शुरू में ही चट से उठाकर चा

में जो नहीं हूँ यह बात उस भीड़ में किसी की पकड़ में आयगी, इसका खयाल मैंने नहीं किया।

उस दिन सन्ध्या समय दामिनी का हृदय खुल गया था। जो सब बातें इच्छा करने पर भी नहीं कही जा सकतीं, मुँह में आकर रुक-रुक जाती हैं—वे भी उस दिन बड़ी सरलता और सुन्दरता के साथ उसके मुँह से बाहर हुई। कहते-कहते उसने मानों अपने मन की अनेक अज्ञात अंधेरी कोठरियाँ देख लीं। उस दिन अपने साथ आमने-सामने खड़ा होने का एक अवसर दैवात् उसको जुट गया था।

ऐसे समय में शचीश कब पीछे से आकर खड़ा हो गया हमलोग जान भी न सके। उस समय दामिनी की आखों से आँसू बह रहे थे। फिर भी बात विशेष कुछ नहीं थी। किन्तु उसकी सभी बातें एक नयनाश्रु की गम्भीरता के भीतर से बहकर आ रही थीं।

शचीश जब आया तब भी कीर्तन की बैठक समाप्त होने में अवश्य ही बहुत देर थी। समझ गया कि भीतर ही भीतर अब तक उसको केवल धक्का ही लगा है। दामिनी शचीश को एका-एक सामने देखकर जल्दी से आखें पोछकर, उठकर पास वाले कमरे की ओर जाने लगी। शचीश ने कंपित कण्ठ से कहा—सुनो दामिनी, एक बात है।

दामिनी धीरे-धीरे पुनः आकर बैठ गयी। मैं चले जाने के लिये हिचक ही रहा था कि उसने इस तरह मेरे मुँह की ओर देखा कि मैं और अधिक हिल न सका।

शचीश ने कहा—हमलोग जिस प्रयोजन से गुरुजी के पास आये हैं तुम तो उस प्रयोजन से नहीं आयी हो।

दामिनी ने कहा—नहीं।

शचीश ने कहा—तब तुम इन भक्तों के बीच क्यों रहती हो ?

दामिनी की दोनों आँखें मानो चिनगारी की तरह चमक उठीं। वह बोली—क्यों रहती हूँ! मैं क्या इच्छापूर्वक हूँ! तुम लोगों के ही भक्तोंने इस भक्तिहीना के पैर में बेड़ी डालकर भक्ति की गारद में रख छोड़ा है! तुम लोगों ने क्या मेरे लिये और कोई रास्ता रख छोड़ा है!

शचीश ने कहा—हमलोगों ने तय किया है कि तुम यदि अपने किसी आत्मीय के पास जाकर रहना चाहो तो हम लोग खर्च आदिका बन्दोबस्त कर देंगे।

तुमलोगों ने तय किया है!

हाँ।

मैंने तय नहीं किया है।

क्यों, इसमें तुम्हारी कौन सी असुविधा है!

तुमलोगों का कोई भक्त किसी मतलब से एक तरह का बन्दोबस्त करेंगे, दूसरा कोई भक्त किसी और ही मतलबसे कोई और ही बन्दोबस्त करेगा, [illegible] मैं तुमलोगों के दस पचीस के खेल की गोटी हूँ!

शचीश अवाक् होकर ठहरा रह गया। दामिनी ने कहा—मैं तुमलोगों को अच्छी लगूँगी यह सोचकर अपनी इच्छा से तुमलोगों के बीच नहीं आई हूँ, मैं तुमलोगों को अच्छी नहीं लग रही हूँ तो तुमलोगों की इच्छा से मैं जाऊँगी [illegible] कहते मुँहपर दोनों हाथ से आँचल दबाकर [illegible] झटपट कमरे में जाकर उसने दरवाजा बन्द कर लिया।

उस दिन शचीश कीर्तन सुनने नहीं [illegible] जमीन के ऊपर चुपचाप बैठा रहा। उस दिन [illegible] दूरस्थ समुद्र की तरंगों के शब्द, [illegible]

एक रुलाई की तरह नक्षत्रलोक की ओर उठाने लगे। मैं बाहर आकर अँधेरे में गाँव के निर्जन मार्ग के बीच घूमने लगा।

गुरुजी हमदोनों को जिस रस के स्वर्गलोक में बाँध रखने की चेष्टा में लगे थे, आज मिट्टी की पृथ्वी उसे तोड़ डालने के लिये कमर कसकर लग गयी है। इतने दिनों तक उन्होंने रूपक पात्र में भावनाओं की मदिरा भरकर केवल हमलोगों को पिलायी है, अब रूप के साथ रूपक के टक्कर लगने से उस पात्र के उलट कर मिट्टी पर गिर जाने की नौबत आ गयी है। आसन्न बिपत्ति का लक्षण उनसे छिपा नहीं रहा।

शचीश आजकल जाने कैसा एक तरह का हो गया है। जिस गुड्डी का तागा टूट गया है उसी की तरह, अब भी हवा में मड़रा रहा है जरूर, किन्तु चक्कर खाकर उसके गिर जाने में अब देर नहीं है। जप, तप, अर्चना आलोचना में बाहर से शचीश का नागा नहीं है, किन्तु आँख देखने से मालूम पड़ता है कि भीतर ही भीतर उसके पैर डगमगा रहे हैं।

और दामिनी ने मेरे सम्बन्ध में कुछ अन्दाजा करने का रास्ता नहीं रखा है! उसने जितना ही समझा कि गुरुजी मन ही मन डर रहे हैं और शचीश मन ही मन व्यथा पा रहा है, उतना ही वह मुझको लेकर और अधिक खींचातानी करने लगी। कभी-कभी मैं, शचीश और गुरुजी एक साथ बैठकर बातचीत करते रहते तो ऐसे ही समय में दरवाजे के पास आकर दामिनी पुकार कर कह जाती, श्री विलासबाबू एक बार आइये तो। श्री विलासबाबू की उसे कौन सी जरूरत है यह भी नहीं बता जाती। गुरुजी मेरे मुँह की ओर ताकने लगते, शचीश भी मेरे मुँह की ओर ताकने लगता और मैं उठूँ या न उठूँ करते करते दरवाजे की ओर देखता हुआ झटपट उठाकर बाहर चला जाता।

मेरे चले आने पर भी बातचीत जारी रखने की कुछ चेष्टा की जाती, किन्तु वह चेष्टा बातचीत से कहीं अधिक हो उठती, फिर उसके बाद बात बन्द हो जाती। इसी तरह से एक भारी, टूटा-फूटा, उबड़-बिखरा काण्ड होने लगा। किसी हालत से भी कुछ रुकना नहीं चाहता था।

हम दोनों ही गुरुजी के दल के दो प्रधान वाहन हैं, ऐरावत और उच्चैःश्रवा ही समझ लीजिये—इसीलिये वे हमलोगों की आशा आसानी से नहीं छोड़ सकते। उन्होंने आकर दामिनी से कहा- बेटी दामिनी, इस बार मैं कुछ दूर और दुर्गम स्थान को जाऊँगा। यहाँ से ही तुमको लौट जाना होगा।

कहाँ जाऊँगी मैं?

अपनी मौसी के यहाँ!

ऐसा तो मैं न कर सकूँगी।

क्यों?

प्रथमतः वे मेरी अपनी मौसी नहीं। इसके अतिरिक्त उनको कौन सी गरज पड़ी है कि मुझे अपने घर में रखेंगी।

जिससे तुम्हारा खर्च भार उनके ऊपर न पड़े हमलोग उनके लिये—

गरज क्या केवल खर्च की ही है? वह जो मेरी देख-भाल और खबरदारी करेंगी इसका भार उनके ऊपर नहीं है?

मैं क्या चिर दिन ही सब समय तुमको अपने साथ रखूँगा।

इस बात की चिन्ता करने का भार किसी ने मेरे ऊपर नहीं दिया। मैंने यह अच्छी तरह समझ लिया है कि मेरा मौसी नहीं है, मेरे बाप नहीं हैं, मेरा मकान नहीं है, पैसा नहीं है, कुछ भी नहीं है और इसीलिये मेरे भार अत्यन्त अधिक है, यह

आपने अपनी इच्छा से लिया है। इसको आप दूसरे के कन्धे पर नहीं लाद सकते।

यह कहकर दामिनी वहाँ से चली गयी। गुरुजी ने एक लम्बी साँस लेकर कहा, मधुसूदन!

एक दिन दामिनी ने मेरे ऊपर हुक्म जारी किया कि मैं उसके लिये कुछ अच्छी बंगला पुस्तकें ला दूँ। यह कह देने में अत्युक्ति न होगी कि अच्छी पुस्तक कहने का मतलब दामिनी के विचार से भक्तिरत्नाकर नहीं है। मेरे ऊपर अपना किसी तरह का अधिकार दिखाने में वह जरा भी संकोच नहीं करती थी उसने एक तरह से यह समझ लिया था कि अधिकार दिखाना ही मेरे ऊपर सबसे अधिक अनुग्रह करना है। कुछ पेड़ ऐसे होते हैं जिनकी डाल और पत्ती छाँट देने से ही अच्छी दशा में रहते हैं—दामिनी की समझ के अनुसार मैं उसी जाति का मनुष्य हूँ।

मैंने जिस लेखक की पुस्तक मँगवाकर उसे दी वह मनुस्य एक दम पूर्णरूप से आधुनिक है। उसके लेखों में मनु की अपेक्षा मानवता का प्रभाव बहुत अधिक प्रबल है। पुस्तक का पैकेट गुरुजी के हाथ जा पड़ा। उन्होने भौहें तानकर कहा, क्यों जी श्रीविलास, ये सब पुस्तकें किसलिए हैं?

मैं चुप हो रहा।

गुरुजी ने दो चार पन्ने उलट कर कहा, इसमें सात्विकता की गन्ध तो विशेष नहीं मिलती। लेखक को मैं बिलकुल ही पसन्द नहीं करता।

मैंने झट से कहा दिया, यदि कुछ ध्यान देकर देखियेगा तो सत्य की गन्ध पाईयेगा।

असल बात तो यह है कि अन्दर ही अन्दर विद्रोह जमता

चा रहा था। भावना के नशे के अवसाद से मैं एकदम सर्वंगित हो रहा था मनुष्य को ठेलकर, केवल मनुष्य की हृदय-वृत्तियों को लेकर, दिन रात इस प्रकार छेड़छाड़ करने से मुझे जितनी अरुचि होनी चाहिये, उतनी हुई है।

गुरुजी थोड़ी देरतक मेरे मुँह की तरफ ताकते रहे, उसके बाद बोले—अच्छा तब तो एकबार मन लगाकर देखा जाय। यह कहकर पुस्तकें अपने तकिये के नीचे रख दीं। समझ गया कि इनको वे लौटाना नहीं चाहते।

अवश्य ही आड़ में से दामिनी को इस मामले का आभास मिल गया था। दरवाजे के पास आकर उसने मुझसे कहा—आपको मैंने जो सब पुस्तकें लाने के लिये कहा था, वे क्या अव-तक नहीं आयीं? मैं चुप हो रहा।

गुरुजी ने कहा—बेटी, ये पुस्तकें तो तुम्हारे पढ़ने योग्य नहीं हैं।

दामिनी ने कहा—आप कैसे समझेंगे?

गुरुजी ने भौंहें टेढ़ी करके कहा—तुम्हीं भला कैसे समझोगी?

मैं तो पहले ही पढ़ चुकी हूँ, आपने शायद नहीं पढ़ी है।

तब फिर इसकी क्या जरूरत रह गयी है?

आपको किसी जरूरत में तो कहीं कोई रुकावट नहीं पड़ती, क्या मुझे ही किसी तरह की कुछ भी जरूरत नहीं पड़ती?

मैं संन्यासी हूँ, यह तो तुम जानती हो।

और मैं संन्यासिनी नहीं हूँ, यह भी आप जानते हैं। मुझे ये पुस्तकें पढ़ने में अच्छी लगती हैं, आप दे दीजिये।

गुरुजी ने तकिये के नीचे से पुस्तकें निकालकर मेरे हाथ पर फेंक दीं। मैंने दामिनी को दे दीं।

घटना जो घटित हुई, इसका परिणाम यह हुआ कि

जिन पुस्तकों को अपने कमरे में अकेली बैठकर पढ़ती थी—अब मुझे बुलाकर उन्हें पढ़कर सुनाने को कहने लगी। बरामदे में बैठकर हमलोगों की पढ़ाई होती है। आलोचना चलती है। शचीश सामने से बार-बार आता जाता है, सोचता है कि बैठ जाय, पर बिना कहे बैठ नहीं सकता।

एक दिन पुस्तक में मजेदार बात मिली, सुनकर दामिनी खिलखिलाकर हँसती हुई अस्थिर हो उठी। हमलोग जानते थे कि मन्दिर में आज मेला लगा है, शचीश वहीं गया है। हठात् देखा कि पीछे के कमरे का दरवाजा खोलकर शचीश बाहर निकला और हमलोगों के ही साथ बैठ गया।

उसी क्षण दामिनी का हँसना एकदम बन्द हो गया। मैं भी हक्कावक्कासा हो गया। सोचने लगा कि, जो भी हो शचीश से कुछ बातचीत तो करूँ, किन्तु सोचने पर एक भी एक बात की याद नहीं आयी, पुस्तक के पन्ने ही केवल चुपचाप उलटने लगा। शचीश जिस तरह हठात् आकर बैठ गया था उसी तरह हठात् उठकर चला गया। उसके बाद उस दिन हमलोगों का और पढ़ना न हो सका। शचीश शायद यह न समझ सका कि दामिनी और मेरे बीच जिस परदे के न रहने के कारण वह मुझसे द्वेष करता है, वास्तव में वही परदा मौजूद है, इसीलिये मैं उससे द्वेष करता हूँ।

उस दिन शचीश ने गुरुजी से जाकर कहा—कुछ दिनों के लिए मैं अकेले समुद्र के किनारे घूम आना चाहता हुँ। एकाध सप्ताह के अन्दर ही लौट आऊँगा।

गुरुजी ने उत्साह के साथ कहा, बहुत अच्छी बात है, जाओ।

शचीश चला गया दामिनी ने मुझे फिर पढ़ने के लिये नहीं

बुलाया और किसी दूसरे काम के लिये जरूरत भी नहीं पड़ी। उसको मुहल्ले की लड़कियों से भेंट मुलाकात करने के लिये जाते भी नहीं देखा। वह कमरे में ही रहती है, उस कमरे का दरवाजा बन्द रहता है।

कुछ दिन बीत गये। एक दिन गुरुजी दोपहर के समय सो रहे थे, मैं छत के बरामदे में बैठकर चिट्ठी लिख रहा था। ऐसे ही समय में शचीश ने एकाएक आकर मेरी ओर न देखकर दामिनी के बन्द दरवाजे को खटखटा कर पुकारा —दामिनी, दामिनी!

दामिनी उसी समय दरवाजा खोलकर बाहर निकल आयी। शचीश की यह कैसी सूरत? प्रचण्ड तूफान का चपेट खाये हुये फटे पाल और टूटे मस्तूलवाले जहाज की तरह अव्यवस्थित मस्तिष्क है दोनों आँखें मलीन है, बाल बिखरे हुए हैं, मुँह सूख गया है, कपड़े मैले हैं।

शचीश ने कहा—दामिनी, तुमको चले जाने के लिये कहा था—यह मेरी भूल थी। मुझे माफ करो।

दामिनी ने हाथ जोड़कर कहा—आप यह कैसी बात कह रहे हैं?

नहीं, मुझे माफ करो। अपनी ही साधना की सुविधा के लिये तुमको इच्छानुसार छोड़ सकता हूँ या रख सकता हूँ, इतने बड़े अपराध की बात मैं कर्म और मन में भी न लाऊँगा—किन्तु तुमसे मेरा एक अनुरोध है, उसको तुमको रखना ही पड़ेगा।

दामिनी ने उसी दम झुककर शचीश के दोनों पैर छूकर कहा—मुझे तुम आज्ञा दो!

शचीश बोला—तुम हमलोगों से सहयोग करो, इस तरह दूर-दूर न रहा करो।

दामिनी ने कहा—सहयोग करूँगी। मैं कोई अपराध न करूँगी।—यह कहकर उसने फिर झुककर पैर छूकर शचीश को प्रणाम किया और फिर कहा—मैं कोई अपराध न करूँगी।

५

पत्थर फिर गल गया। दामिनी में जो असहनीय दीप्ति थी उसका प्रकाशमात्र रह गया, ताप नहीं रहा। पूजा अर्चना में मधुरता का फूल खिल उठा। जब कीर्तन मण्डली की बैठक, जब वे गीता या भागवत की व्याख्या करते, उस समय दामिनी कभी क्षणभर के लिये भी अनुपस्थित नहीं रहती थी। उसकी साजसज्जा में भी परिवर्तन हो गया। फिर से उसने अपनी टसर की साड़ी पहिनना शुरू किया। दिन में जब भी वह दिखाई पड़ती मालूम होता मानो वह अभी स्नान करके आयी है।

गुरुजी के साथ व्यवहार में ही उसकी सबसे बढ़कर कठिन परीक्षा है। वहाँ जब वह उपस्थित होती तब उसकी आँखों के कोने में मैं एक रुद्र तेज की झलक देख पाता। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि गुरुजी का कोई हुक्म वह मन में जरा भी सह नहीं सकती थी, किन्तु उनकी सभी बातों को उसने इतनी दूर तक चुपचाप मान लिया था कि एक दिन वे उससे बंगला के उस आधुनिक लेखक की रचना के विरुद्ध साहस करके आपत्ति प्रकट कर सके थे। दूसरे दिन उन्होंने देखा कि उनके दिन के समय के विश्राम करने के बिस्तर के पास कुछ फूल पड़े

हुए हैं, ये फूल उस लेखक की पुस्तक के फटे पन्नों पर सजाये गये हैं।

अनेक बार देखा है, जब गुरुजी शचीश को अपनी सेवा के लिए बुलाते तो यही बात दामिनी के लिए सबसे अधिक असहनीय हो उठती। वह किसी तरह ठेलठाल कर शचीश का काम स्वयं करने की चेष्टा करती, किन्तु हर समय वह सम्भव नहीं होती थी। इसीलिए शचीश जब गुरुजी की चिलम सुलगाने के लिए फूंक मारता तब दामिनी जी जान से मनही मन कहा करती—अपराध न करूंगी, अपराध न करूंगी।

लेकिन शचीश ने जैसा सोचा था वैसा कुछ भी न हुआ। एक बार दामिनी जब इसी तरह नत हुई थी तब शचीश ने उसमें केवल माधुर्य ही देखा था, मधुर को नहीं देखा था। इस बार दामिनी स्वयं उसके निकट इस तरह सत्य हो उठी कि गाने का पद, तत्व का उपदेश, सभी को ठेलकर वह जो दिखलाई देती है, किसी हालत से उसको दबा रखना सम्भव नहीं है। शचीश उसको इतना स्पष्ट देख पाता है कि उसके भाव की खुमारी टूट जाती है। अब वह किसी हालत से भी उसको एक भावरस का रूपक मात्र कहकर नहीं सोच सकता। अब दामिनी गीतों को नहीं सजाती बल्कि गीत ही दामिनी को सजा डालते हैं।

यहां पर यह मामूली बात कह रखूं कि मुझसे दामिनी को अब और कोई प्रयोजन नहीं है।

मेरे प्रति उसकी सभी फरमाईशें एकाएक बन्द हो गयी हैं। मेरे जो कई एक सहयोगी थे उनमें से चील भाग चुकी है, नेवला भाग गया है, कुत्ते के पिल्ले के अनाचार से गुरुजी नाराज थे, इसलिए दामिनी उसे कहीं छोड़ आयी है। इस बेकार और संगीहीन हो जाने से मैं फिर से गुरुजी के

में पहले की तरह मतवाला हो गया, यद्यपि वहां की सारी बातचीत, गाना बजाना, मेरे लिए एकदम बुरी तरह से स्वादहीन हो गया था।

— | —

६

एक दिन शचीश कल्पना की खुली भट्टी में पूर्व और पश्चिम के अतीत और वर्तमान के समस्त दर्शन और विज्ञान, रस और तत्वों का एकत्रिकरण कर एक अपूर्व अर्क बना रहा था, उसी समय दामिनी एकाएक दौड़ती हुई आकर बोली, तुमलोग जरा जल्दी चलो।

मैं चटपट उठकर बोला —क्या हुआ?

दामिनी ने कहा—नवीन की स्त्री ने शायद जहर खा लिया है। नवीन हमारे गुरुजी के एक शिष्य का आत्मीय है। हमलोगों का पड़ोसी और हमलोगों के कीर्तन के दल का एक गायक है। जाकर देखा, उसकी स्त्री तबतक मर चुकी थी। खबर लेने पर मालूम हुआ कि नवीन की स्त्री ने अपनी मातृहीना भगिनी को अपने पास लाकर रखा था। ये लोग कुलीन हैं, इसलिये उपयुक्त पात्र का मिलना कठिन है। लड़की देखने में अच्छी है। नवीन के छोटे भाई को लड़की पसन्द है और वह उससे विवाह करेगा। वह कलकत्ते में, कालेज में पढ़ता है और कई महीने बाद परीक्षा देकर आगामी आषाढ़ महीने में वह विवाह करेगा, ऐसी बात थी। ऐसे समय नवीन की स्त्री के निकट यह बात प्रकट हो गयी कि उसके पति और उसकी भगिनी में परस्पर

आसक्ति पैदा हो गयी है। तब अपनी मगनी से विवाह करने के लिये उसने पति से अनुरोध किया। बहुत अधिक कहने सुनने की आवश्यकता नहीं हुई। विवाह हो जाने के बाद नवीन की पहली स्त्री ने विष खाकर आत्महत्या कर ली है।

तब और कुछ करने को नहीं रह गया था। हमलोग लौट आये। गुरुजी के पास बहुत से शिष्य आये, वे उनको कीर्तन सुनाने लगे—गुरुजी कीर्तन में योग देकर नाचने लगे।

आज प्रथम रात्रि में ही चांद ऊपर उठ आया है। छत के जिस कोने की तरफ एक इमली का पेड़ झुक गया है उसी जगह के छायाप्रकाश के संगम में दामिनी चुपचाप बैठी थी। शचीश उसके पीछे की तरफ ढके हुए बरामदे में धीरे-धीरे टहल रहा था। मुझे डायरी लिखने की आदत है, कमरे में अकेला बैठकर लिख रहा था।

उस दिन कोकिला की आँख में नींद नहीं थी। दक्षिणी हवा में पेड़की पत्तियाँ मानो बोल उठना चाहती है, उनके ऊपर चांद की चाँदनी झिलमिला उठती है। हठात् एक समय शचीश के न मालूम मन में क्या हुआ, वह दामिनी के पीछे आकर खड़ा हो गया। दामिनी चौंक कर माथे पर कपड़ा खींच एकदम से उठकर जाने का उपक्रम करने लगी। शचीश ने पुकारा—दामिनी!

दामिनी ठिठक कर खड़ी हो गयी। फिर हाथ जोड़कर बोली—प्रभु, मेरी एक बात सुनिये।

शचीश ने चुपचाप उसके मुँहकी ओर देखा। दामिनी बोली, मुझको यह समझा दो कि तुमलोग दिनरात जिस चीज को लेकर पड़े हुए हो उसकी दुनिया को कौन सी जरूरत है? तुमलोग किसको बचा सके?

मैं कमरे से बाहर आकर बरामदे में खड़ा हो गया। द

बोली, तुमलोग दिन रात रस-रस की रट लगा रहे हो, उसे छोड़कर और कोई बात नहीं। रस किसे कहते हैं, यह तो आज तुमने देख ही लिया? उसका न तो धर्म है, न कर्म है, न भाई है, न स्त्री है, न कुल है, न मान है, उसको दया नहीं है, विश्वास नहीं है, लज्जा नहीं है, शर्म नहीं है। इस निर्लज्ज सर्वनाशक रस के रसातल से, मनुष्य की रक्षा करने के लिए तुम लोगों ने कौन सा उपाय किया है।

मैं चुप न रह सका, बोल उठा—हमलोगों ने स्त्री जाति को अपनी चौहद्दी से दूर खदेड़ कर निःशंक रस की चर्चा करने का जाल रचा है।

मेरी बातों पर बिल्कुल ध्यान न देकर दामिनी ने शचीश से कहा—मैं तुम्हारे गुरु के निकट से कुछ भी नहीं पायी। वे मेरे उन्मादग्रस्त हृदय को एक मुहूर्त के लिए भी शांत न कर सके। आग से आग बुझायी नहीं जाती। तुम्हारे गुरु जिस पथ पर सबको चला रहे हैं उस पथपर धैर्य नहीं है, वीर्य नहीं है, शान्ति नहीं है। यह जो लड़की मरी है, रस के पथ पर रस की राक्षसी ने ही तो उसके हृदय के रक्त को चूस चूसकर उसको मारा। उसका कैसा कुत्सित स्वरूप है यह तो तुम देख ही चुके। प्रभु, हाथ जोड़कर कहती हूँ इस राक्षसी के निकट मेरा बलिदान न करो। मुझको बचाओ, यदि मुझको कोई बचा सकता है तो वह तुम हो

थोड़ी देर के लिये हम तीनो ही चुप रहे। चारों दिशायें ऐसी स्तब्ध हो उठी कि मालूम पड़ा जैसे झिल्ली के शब्द से पाण्डुवर्ण आकाश का सारा शरीर अवसन्न होता जा रहा है।

शचीश ने कहा—कहो मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूँ?

दामिनी ने कहा—तुम्हीं मेरे गुरु हो जाओ। मैं और किसी

को भी न मानूँगी। तुम मुझे ऐसा कुछ मन्त्र दो जो इन सभी से कहीं बढ़कर, बहुत ऊपर की चीज हो—जिससे मैं बच जा सकूँ। मेरे देवता को भी मेरे साथ मत लाओ।

शचीश स्तब्ध खड़ा रहकर बोला—वही होगा।

दामिनी शचीश के पैरों के निकट जमीन पर माथा रखकर कुछ देर तक प्रणाम करती रही। फिर गुनगुनाती हुई कहने लगी—तुम मेरे गुरु हो, तुम मेरे गुरु हो, मुझको सभी अपराधों से बचाओ, बचाओ, बचाओ!

परिशिष्ट

फिर एक दिन कानाफूसी तथा समाचार पत्रों में गालीगलौज हुई और शचीश का मत बदल गया। एक दिन खूब ऊँचे स्वर से वह चिल्लाता फिरता था कि, न तो जात पांत मानता है न धर्म ही। उसके बाद और एक दिन खूब ऊँचे स्वर से उसने खाना पीना, छुआछूत, स्नानतर्पण, पूजा, देव-देवी कुछ भी मानना बाकी न रखा। उसके बाद और एक दिन इन सभी को मान लेने के अतुलित बोझ को फेंककर वह चुपचाप शान्त होकर बैठ रहा। क्या माना और क्या नहीं माना यह समझ में न आया। केवल यही देखा गया कि पहले की तरह वह फिर से काम में लग गया है, किन्तु उसमें झगड़ा या विवाद का कुछ भी सार नहीं है।

और इस बात को लेकर समाचार पत्रों में यथेष्ट विद्रूप और कटूक्ति हो गयी है कि मेरे साथ दामिनी का विवाह हुआ है। इस विवाह का रहस्य क्या है उसे सब लोग न समझेंगे, समझने का प्रयोजन भी नहीं है।

विलास

१

यहां पर एक समय एक नील कोठी थी। उसका सारा भाग टूट फूट गया है, केवल कुछ कमरे बाकी रह गये हैं। दामिनी की मृत देह का दाहसंस्कार करके गांव को लौटते समय यह स्थान मुझे पसन्द आया, इसलिए कुछ दिनों के लिए यहीं पर रह गया।

नदी से लेकर कोठी तक जो रास्ता था उसके दोनों किनारों पर शीशम के पेड़ की कतारें हैं। बगीचे में जाने के लिये भग्न फाटक के दो खम्भे और दीवाल के एक तरफ कुछ हिस्से रह गये हैं, किन्तु बगीचा नहीं है। बचे खुचे में एक कोने में कोठी के किस एक मुसलमान गुमाश्ते की कब्र रह गयी है। कब्र की दरारों में घने जूही और मदार के पेड़ खड़े हैं, नीचे से लेकर ऊपर तक एकदम फूलों से भरा है। विवाह मण्डप में सालियों की तरह मृत्यु से मजाक करते हुए, दक्षिणी हवा में हंस हंसकर लहालोट हो रहे हैं। पोखरी का किनारा टूट गया है और पानी

सुन गया है, उसी के नीचे घनिया के साथ-साथ किसानों ने चना की भी खेती की है। मैं जब प्रातःकाल काई लगी हुई भीटे के ऊपर शीशम की छाया में बैठा रहता, उस समय धनिया के फूलों की महक से मेरा मस्तिष्क भर आता है।

बैठे-बैठे सोचता, यह नील कोठी, जो कि आज कमाईखाने में गाय की दो चार हड्डियों की तरह पड़ी हुई है, एक दिन सजीव थी। उसने चारो ओर सुख दुख की जो लहरें उठा रखी थीं; मालूम पड़ता था कि वह तूफान किसी काल में शान्त न होगा। जिस प्रचण्ड अंग्रेज साहब ने यहां पर बैठकर हजारों हजारों गरीब किसानों का रक्त नील करके छोड़ा था, उसके सामने मैं एक सामान्य बंगाली सन्तान बचा हूँ। किन्तु पृथ्वी ने अपनी कमर को हरे आँचल से कसकर, अनायास ही उसके साथ, उसकी नील कोठी के साथ सबको खूब अच्छी तरह से मिट्टी देकर लीप-पोतकर बराबर कर दिया है। जो एकाध बचे खुचे दाग दिखाई दे रहे हैं उनपर 'पोतने' का एक और लेप पड़ते ही एकदम साफ हो जावेंगे।

बात पुरानी है, मैं उसकी पुनरावृत्ति करने नहीं बैठा हूं। मेरा मन कह रहा है, नहीं जी, प्रभात के बाद प्रभात, यह केवलमात्र काल का आँगन-लिपाई नहीं है। नील कोठी का वही साहब और उसकी नील कोठी की विभीषिका जरा सी धूल की निशानी की तरह मिट गयी है जरूर—किन्तु मेरी दामिनी!

मैं जानता हूँ मेरी बातों को कोई नहीं मानेगा। शंकराचार्य का मोहमुद्गर किसी को रिहाई नहीं करता। मायामयमिद-मखिलं इत्यादि इत्यादि, किन्तु शंकराचार्य संन्यासी थे—को तव कान्ता कस्ते पुत्र:—ये सब बातें उन्होंने कही थी—किन्तु इनका अर्थ उन्होंने नहीं समझा। मैं संन्यासी नहीं हूँ, इस ... सब

अच्छी तरह जनता हूँ कि दामिनी कमल के पत्ते पर ओस की बूँद नहीं है।

किन्तु सुनता हूँ कि गृहस्थ लोग भी ऐसी ही वैराग्य की बातें कहते हैं। कहते होंगे। वे केवलमात्र गृही हैं—वे गँवाते हैं अपनी गृहिणी को। उनकी घर गृहस्थी भी सचमुच माया है, उनकी गृहणी भी वही हैं। यह सब हाथ की बनायी हुई चीजें हैं, झाड़ू लगते ही साफ हो जाती हैं।

मुझको तो गृही होने का समय मिला नहीं, और सन्यासी होना मेरे वश में नहीं है, यही मेरा कुशल है। इसीलिये मैंने जिसको अपने निकट पाया वह गृहिणी न हुई, वह माया न हुई, वह सत्य होकर रही, वह अन्त तक दामिनी रह गयी। किसकी मजाल जो उसको छाया कहे।

दामिनी को यदि मैं केवलमात्र घर की गृहिणी कहकर समझता तो फिर इतनी बात न लिखता। उसको मैंने उस सम्बन्ध से कहीं बड़ा करके और सत्य कहकर जाना है। इसी-लिए तो सभी बातों को खोलकर लिख सका, लोग जो कुछ कहें कहने दो।

माया के संसार में मनुष्य जिस तरह से दिन व्यतीत करता है उसी तरह से दामिनी को लेकर यदि मैं पूरी यात्रा से घर गृहस्थी कर सकता, तो तेल लगाकर स्नान करके भोजनोपरान्त पान चबाकर निश्चिन्त रहता। तब दामिनी की मृत्यु के बाद श्वांस छोड़ कर कहता, 'संसारोत्यमतीव विचित्रं' और संसार का वैचित्र्य एक बार पुनः परीक्षा करके देखने के लिए किसी एक बुआ या मौसी का अनुरोध शिरोधार्य कर लेता। किन्तु पुराने जूते के जोड़ में पैर जिस तरह बैठता है, उस तरह नितान्त सरलता के साथ मैंने अपनी घर गृहस्थी में प्रवेश नहीं किया।

शु रू से ही सुख की प्रत्याशा छोड़ दी थी। नहीं, यह बात ठीक नहीं है—सुख की प्रत्याशा छोड़ दूँगा इतना बड़ा निकम्मा मैं नहीं हूँ। सुख की आशा निश्चय ही करता, किन्तु सुख के लिए दावा करने का अधिकार मैंने नहीं रखा।

क्यों नहीं रखा? इसका कारण, मैंने ही दामिनी को विवाह करने के लिए राजी कराया था। किसी रंगीन चोली के घूंघट के नीचे सहाना रागिनी की तान में तो हमलोगों की शुभदृष्टि हुई नहीं, दिन के प्रकाश में सब देख सुन समझ-बूझकर ही यह काम किया है।

लीलानन्दन स्वामी को छोड़कर जब चला आया तब नून लड़की की बात सोचने का समय चला आया। इतने दिन जहां-जहां गया वहां खूब ठूँस-ठूँस कर गुरुजी का प्रसाद खाया, भूख से अधिक अजीर्णता की व्याधि ने ही अधिक भोगाया। संसार में मनुष्य को घर बनवाना, घर की रक्षा करना, और कम से कम घर भाड़ा करना पड़ता है, यह बात एकदम भूल गया था। हम लोग केवल यही जानते थे कि घर में सिर्फ रहा जाता है। गृहस्थ जहाँ कहीं भी हाथ-पैर सिकोड़ कर जरा सी जगह कर लेगा, इस बात को हम लोगोंने सोचा ही नहीं, लेकिन हम-लोग कहां पर खूब हाथ-पैर फैलाकर आराम करेंगे, गृहस्थ लोगों के ही दिमाग में यही भावना थी।

तब याद आयी कि बड़े चाचाजी शचीश को अपना [illegible] वसीयत कर रहे हैं। वसीयतनामा यदि शचीश के हाथ [illegible] रहता तो अबतक भावनाओं के स्रोत में रस की तरंगों [illegible] की नाव की तरह डूब गया होता। वह मेरे ही पास [illegible] एक्जीक्यूटर था। वसीयतनामें में कुछ शर्तें थीं। वे [illegible] कायम रहें इसका भार मेरे ऊपर था। उनमें से [illegible]

यह है—किसी दिन भी इस मकान में पूजा अर्चना न हो सकेगी, नीचे की मंजिल में महल्ले के मुसलमान और चमारों के लड़कों के लिए रात्रि पाठशाला रहेगी और शचीश की मृत्यु के बाद पूरा मकान इनकी शिक्षा और उन्नति के लिए दान करना पड़ेगा। संसार में पुण्य के ऊपर बड़े चाचाजी को सबसे अधिक क्रोध था। वे पैशाचिकता से इसको अधिक गन्दा समझते थे। बगलवाले मकान की घोरतर पुण्य की हवा को हटाने के लिए ही इस प्रकार की व्यवस्था कर गये थे। वे इसको अंग्रेजी में सेनिटरी प्रिकाशन कहते थे।

मैंने शचीश से कहा—चलो अब कलकत्ते वाले उसी मकान में रहा जाय।

शचीश ने कहा—अभी उसके लिए अच्छी तरह से तैयार नहीं हो सका हूँ।

उसकी बात समझ में नहीं आयी। उसने कहा—एक दिन मैंने बुद्धि के ऊपर भरोसा किया, देखा वह जीवन के सभी भार को सहन नहीं कर सकती। और एक दिन रस के ऊपर भरोसा किया, देखा, वहाँ पर तरला नाम की कोई वस्तु ही नहीं है। बुद्धि भी मेरी अपनी है और रस भी तो वही है। अपने से, अपने ऊपर खड़ा होने से काम नहीं चलता। एक आश्रय जब तक नहीं मिल जाता तब तक मैं शहर में लौटने का साहस नहीं करता।

मैंने पूछा—तब क्या करना होगा, बताओ।

शचीश ने कहा—तुम और दामिनी दोनों जाओ, मैं कुछ दिन अकेला ही घूमता रहूँगा। मैं एक किनारा ऐसा देख रहा हूं, इस समय यदि उसकी दिशा खो दूँगा तो फिर खोजकर पाना मुश्किल हो जायेगा।

आड़ में आकर दामिनी ने मुझसे कहा—यह नहीं हो सकता। अकेले घूमते रहेंगे, उनकी देखभाल कौन करेगा? तब की बार एक बार अकेले बाहर गये थे, कैसा चेहरा लेकर लौटे थे? उस बात को याद कर मुझे डर मालूम होता है।

सच बात कहूं? दामिनी की उद्विग्नता से मेरे मनमें जैसे एक क्रोध के भौरे ने डंक मार दिया—जलन होने लगी। बड़े चाचा की मृत्यु के बाद शचीश प्रायः दो साल तक अकेला ही घूमता रहा, लेकिन मरा तो नहीं। मन का भाव छिपा नहीं रहा—जरा झंकार के साथ ही कह डाला।

दामिनी ने कहा—श्री विलास बाबू, मनुष्य को मरते बहुत समय नहीं लगता है यह मैं जानती हूँ। लेकिन जरा भी दुःख क्यों होने दूँगी जब कि हमलोग मौजूद हैं।

हमलोग! बहुवचन का कम से कम आधा अंश यह अभागा श्री विलास है। पृथ्वी पर एक दल के मनुष्य को दुख से बचाने के लिये एक दूसरे दल को दुख भोगना पड़ेगा। इस दो तरह की दो जातियों के मनुष्य को लेकर संसार का कारवार चलता है। मैं जो कौन सी जाति का हूँ, यह दामिनी ने समझ लिया है। जो हो, दल में खींच लायी यही मेरा सबसे बड़ा सौभाग्य है।

मैंने शचीश से जाकर कहा—अच्छी बात है, शहर में अभी न भी जाऊँ तो कोई हर्ज नहीं। नदी किनारे वह जो टूटहा उजड़ा मकान है उसी में कुछ दिन बिताया जाय। अफवाह है कि उस मकान में भूतों का उत्पात होता है, अतः एक मनुष्य का उत्पात वहां पर न होगा।

शचीश ने कहा—और तुम लोग?

मैंने कहा—हमलोग भूत की तरह ही जहां तक हो सकेगा शरीर ढक कर पड़े रहेंगे।

शचीश ने दामिनी के मुंह की ओर एक बार देखा। उस देखने में सम्भवतः कुछ भय था।

दामिनी ने हाथ जोड़कर कहा—तुम मेरे गुरु हो। मैं जितनी भी पापिष्ठा क्यों न होऊँ, मुझको सेवा करने का अधिकार देना।

——*

२

जो भी हो, शचीश की इस साधना की व्याकुलता मेरी समझ में नहीं आती। एक दिन तो इस चीज को मैंने हंस कर उड़ा दिया है किन्तु अब और जो भी करूँ, हँसी बन्द हो गयी है। भूलभुलैया का आलोक नहीं, यह तो आग है। शचीश के भीतर इसकी ज्वाला को जब देखा तब इसको लेकर बड़े चाचाजी की चेलागिरी करने का और साहस नहीं हुआ। किस भूत के विश्वास से इसका आदि और किस अद्भुत के विश्वास से इसका अन्त है इसे लेकर हर्बर्ट स्पेन्सर के साथ तुलना करने से क्या होगा। स्पष्ट देख रहा हूँ कि शचीश प्रकाश से चमक रहा है, उसका जीवन एक ओर से दूसरी ओर तक लाल हो उठा है।

इतने दिनों तक वह नाच गाकर—रोकर गुरुजी की सेवा करके दिन रात स्थिर था, वह अवस्था एक तरह से अच्छी ही थी। हृदय की समस्त चेष्टाओं को प्रत्येक मुहूर्त में फूंक कर वह एकदम अपने को दीवालिया कर देता था। अब स्थिर होकर

बैठा है, मन को अब और दबा रखने का उपाय नहीं है। अब भाव के सम्भोग के लिए गहराई में नहीं जाना है, अब तो उपलब्धि पर प्रतिष्ठित होने के लिए भीतर ऐसी लड़ाई चल रही है कि उसका मुँह देखकर डर लगता है।

एक दिन मुझसे नहीं रह गया, बोला—देखो शचीश, मालूम पड़ता है कि तुमको किसी एक अच्छे गुरु की आवश्यकता है, जिसके ऊपर भरोसा करके तुम्हारी साधना सरल हो जायगी।

शचीश क्रुद्ध विरक्त होकर बोला—चुप रहो विश्री, चुप रहो—सरल की किसकी आवश्यकता होती है? धोखा ही सरल है, सत्य कठिन होता है।

मैंने डरते-डरते कहा—सत्य को पाने के लिए ही तो पथ दिखाने का—

शचीश अधीर होकर बीच ही में बोल उठा—अजी यह तुम्हारे भूगोल विवरण का सत्य नहीं है, अन्तर्यामी केवल मेरे पथ से ही आया जाया करते हैं—गुरु का पथ, गुरु के आँगन में ही जाने का पथ है।

इस एक शचीश के मुँह से कितनी बार, कितनी उल्टी बातें ही सुनने में आयीं। मैं श्री विलास हूँ, और बड़े चाचाजी का चेला भी हूँ, किन्तु उनको यदि गुरु कहकर सम्बोधित करता तो वे चैला लेकर मारने दौड़ते। इसी शचीश ने मुझसे गुरु का पैर तक दबवा लिया, और फिर दो दिन न जाते ही, वक्तृता झाड़ने लगता। मुझसे हँसने का साहस नहीं हुआ, गम्भीर हो रहा।

शचीश ने कहा—आज मैं स्पष्ट समझ गया कि स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः शब्द का क्या माने है।

सभी वस्तुएँ दूसरों के हाथ से ली जा सकती हैं किन्तु धर्म यदि अपना नहीं होता तो वह मरता है, बचाता नहीं। मेरे भगवान दूसरे के हाथ की मुष्टिभिक्षा नहीं हैं, यदि उनको पाना है तो मैं ही उनको पाऊँगा, नहीं तो निधनं श्रेयः।

तर्क करना मेरा स्वभाव है, मैं सहज न छोड़नेवाला पात्र नहीं हूँ। मैंने कहा, जो कवि है वह मन के भीतर से कविता पाता है और जो कवि नहीं है वह दूसरे के पास से कविता लेता है।

शचीश ने अम्लानभाव से कहा—मैं कवि हूँ।

बस तर्क खतम हो गया, मैं लौट आया।

शचीश खाता नहीं, सोता नहीं, कब कहाँ रहता है होश ही नहीं रहता। शरीर प्रतिदिन हो मानो खूब शान दी हुई छुरी की तरह सूक्ष्म होता जा रहा है। देखने से मालूम पड़ता है कि अब और बर्दाश्त न होगा। फिर भी मैं उसको छोड़ने का साहस नहीं करता। किन्तु दामिनी को यह सहन न होता। भगवान के ऊपर वह बहुत नाराज होती—जो उनकी भक्ति नहीं करता उसी के निकट वे जल्द आते है, और केवल भक्तों के ही ऊपर इस तरह का प्रतिशोध लिया जाता है? लीलानन्द स्वामी के ऊपर नाराज होकर दामिनी बीच-बीच में अपनी भावना खूब कड़ाई के साथ प्रकट कर देती किन्तु भावना के पास तक पहूँचने का उपाय नहीं था।

फिर भी शचीश को समयानुसार नहलाने और खिलाने की चेष्टा करने से बाज न आती। इस बढंगे बेमेल मनुष्य को नियम में बाँध रखने के लिए वह कितने प्रकार के सोच-विचार का जाल रचती, उसका कोई ठिकाना नहीं था।

बहुत दिनों तक शचीश ने स्पष्टरूप से इनका कोई प्रतिवाद

शचीश बैठा हुआ है। सामने का पानी एकदम नील है, किनारे-किनारे चंचल रंगबिरंग के पक्षी अपने पूंछ नचा-नचाकर श्वेत और श्याम डैने की झलक दिखला रहे हैं। कुछ दूर पर चकवा-चकई के दल खूब शोरगुल करते-करते किसी हालत से भी पीठ के परों को सम्पूर्ण इच्छानुसार साफ नहीं कर पा रहे हैं। दामिनी के करारे पर खड़ी होते ही वे बोलते-बोलते पंख फैलाकर उड़ गये।

दामिनी को देखकर शचीश बोल उठा—यहां पर क्यों?

दामिनी ने कहा—खाना लायी हूँ।

शचीश ने कहा—नहीं खाऊँगा।

दामिनी ने कहा—बहुत देर हो गयी है।

शचीश ने केवल कहा—नहीं।

दामिनी ने कहा—न तो मैं जरा बैठ जाऊँ, तुम कुछ देर बाद—

शचीश बोल उठा—आह! क्यों मुझको तुम—

हठात् दामिनी का चेहरा देखकर वह रुक गया। दामिनी और कुछ नहीं बोली, थाली हाथ में लेकर चली गयी। चारों ओर शून्य बालू, रात्रि में बाघ की आंख को तरह झलकने लगी।

दामिनी की आँखों में आग जितनी सरलता से जल उठती है, पानी उतनी सरलता से नहीं गिरता। किन्तु उस दिन जब उसको देखा तो वह जमीन पर पैर फैलाये बैठी हुई थी, आँखों से पानी गिर रहा था। मुझको देखकर उसकी रुलाई जैसे बांध तोड़कर उमड़ पड़ी। मेरे हृदय के अन्दर न जाने कैसा होने लगा। मैं एक तरफ बैठ गया।

किंचित स्वस्थ होने पर मैंने उससे कहा, शचीश के शरीर के लिए तुम इतनी चिन्ता क्यों कर रही हो?

दामिनी बोली और किसके लिए मैं चिन्ता कर सकती हूँ बतलाओ ! और सभी की चिन्ताओं का तो स्वयं ही चिन्तन कर रहे हैं। मैं क्या उनका कुछ समझ पाती हूँ या मैं उनका कुछ कर सकती हूँ !

मैंने कहा—देखो, मनुष्य का मन जब खूब जोर के साथ किसी एक पर जा कर जमता है तब उसके शरीर का समस्त प्रयोजन आप ही आप कम हो जाता है। इसीलिये तो बड़े दुःख या बड़े आनन्द में मनुष्य की भूख प्यास नहीं रहती, इस समय शचीश के मन की जैसी अवस्था है उसमें उसके शरीर के प्रति यदि ध्यान न भी दो तो उसकी कोई क्षति न होगी।

दामिनी बोला—मैं तो स्त्री जाति हूँ। इसी शरीर को ही तो देह और प्राण से तैयार करना हम लोगों का स्वधर्म है। यह तो एकदम [illegible] की अपनी कीर्ति है। इसलिए जब देखती हूँ कि शरीर कष्ट पा रहा है तब बड़ी सरलता से हम लोगों का मन [illegible] उठता है।

मैंने कहा—इसलिए जो लोग केवल मन को ही लेकर रहते हैं; शरीर के [illegible] तुम लोगों को वे लोग आँख से भी नहीं देख [illegible]

दामिनी [illegible] कहा, देख क्यों नहीं पाते। वे इस तरह से देखते हैं [illegible] एक अनासृष्टि है।

मैंने [illegible] अनासृष्टि के ऊपर तो तुमलोगों के लोभ [illegible] श्रीविलास, उस जन्म में जिससे अनासृष्टि [illegible] ले सको ऐसा [illegible]

३

उस दिन नदी किनारे शचीश ने दामिनी को ऐसी गहरी चोट दी कि जिसका नतीजा यह हुआ कि दामिनी की उस कातर दृष्टि को शचीश अपने मन से दूर न कर सका। उसके बाद कुछ दिनों तक वह दामिनी के प्रति किंचित विशेष यत्न दिखलाते हुए अनुताप का व्रत यापन करने लगा। बहुत दिनों तक तो उसने हमलोगों के साथ खुलकर बात ही नहीं की, अब वह दामिनी को पास बुलाकर उसके साथ आलाप करने लगा। जो सब बातें उसके अनेक ध्यान और अनेक चिन्ताओं की थीं। वे ही उसके आलाप के विषय के अन्तर्गत थीं।

दामिनी को शचीश की उदासीनता का भय नहीं था किन्तु वह इस प्रकार के यत्न से बहुत भयभीत होती थी। वह जानती थी कि इतना बर्दाश्त न होगा। क्योंकि इसका मूल्य बहुत ज्यादा है। एक दिन हिसाब की ओर जभी शचीश की नजर पड़ेगी, देखेगा कि खर्च बहुत अधिक पड़ रहा है और उसी दिन आफत आ पड़ेगी। शचीश जब अत्यन्त भले लड़के की तरह खूब नियमानुसार स्नानाहार करता, तो दामिनी का हृदय धड़कने लगता, उसे न जाने कैसी लज्जा मालूम होने लगती है। शचीश के अवाध्य होने से ही वह मानो अपना छुटकारा समझती थी। वह अपने मन में कहती, उस दिन तुमने मुझको दूर कर दिया था, अच्छा ही किया था। मेरा यत्न करना यह तो तुम्हारा अपने को दण्ड देना है। इसे मैं किस तरह बरदाश्त कर सकूँगी?—दामिनी ने सोचा, हटाओ जाने दो, देखती हूँ यहाँ

पर भी लड़कियों के साथ मेल जोल बढ़ाकर मुझको फिर से मुहल्ले मुहल्ले घूमना पड़ेगा।

एक दिन रात को हठात् पुकार हुई, विश्री, दामिनी!—उस समय रात्रि में एक बजा था कि दो बजे थे, शचीश को यह खयाल ही न था। रात में शचीश क्या-क्या कायड करता है वह मैं नहीं जानता किन्तु इतना निश्चित था कि उसके उत्पात से इस भुतहे मकान के भूत लोग व्याकुल हो उठे हैं।

हम लोगों ने नींद से चटपट जागकर बाहर आकर देखा कि शचीश मकान के सामने वाले चबूतरे के ऊपर अँधेरे में खड़ा है। वह कह उठा, मैंने अच्छी तरह से समझ लिया है मन में जरा भी सन्देह नहीं है।

दामिनी धीरे-धीरे उस चबूतरे पर जाकर बैठ गयी, दामिनी भी उसका अनुसरण करते हुए अन्यमनस्क भाव से बैठ गयी। मैं भी बैठा।

शचीश बोला—जिस ओर मुंह करके वे मेरी ओर आ रहे हैं, मैं यदि उसी ओर मुंह करके चलता रहूँ तो उनके निकट केवल दूर हटता जाऊंगा। मैं ठीक उलटे मुंह की ओर जब चलूंगा तभी तो जाकर मिलन होगा।

मैं चुप होकर उसकी झल-मल करती हुई आखों की ओर देखता रहा। उसने जो कुछ कहा वह रेखागणित के हिसाब से तो ठीक है, पर मामला क्या है?

शचीश कहता गया, वे रूप को प्यार करते हैं इसीलिए केवल रूप की ओर उतरते आ रहे हैं। हमलोग केवल रूप को ही लेकर तो रह नहीं सकते, इसलिये हमलोगों को अरूप की ओर दौड़ना पड़ता है। वे मुक्त हैं इसलिए उनकी लीला, बन्धन में है, हम लोग बन्धन में हैं इसलिए [illegible]

मुक्ति में हैं। इस बात को न जानने से ही हम लोगों को इतना दुःख है।

तारे जिस तरह निस्तब्ध रहते हैं हमलोग भी उसी तरह निस्तब्ध होकर बैठे रहे। शचीश ने कहा—दामिनी, क्या नहीं समझ रही हो? जो गाना गाता है वह आनन्द की ओर से रागिनी की ओर जाता है, और जो गाना सुनता है वह रागिनी की ओर से आनन्द की ओर जाता है। एक आता है मुक्ति से बन्धन में, और एक जाता है बन्धन से मुक्ति में, तभी तो दोनों पक्ष का मिलन होता है। वे गा रहे हैं और हमलोग सुन रहे हैं। बांधते-बांधते सुनाते हैं और हमलोग खोलते-खोलते सुनते हैं।

दामिनी शचीश की बातों को समझ सकी या नहीं यह मैं नहीं कह सकता, किन्तु वह शचीश को पहचान सकी, इसमें सन्देह नहीं। अपनी गोद के ऊपर दोनों हाथो को जोड़े चुपचाप बैठी रही।

शचीश ने कहा—अब तक मैं अन्धकार के एक कोने में चुपचाप बैठा हुआ उस उस्ताद का गाना सुन रहा था, सुनते-सुनते एकाएक सब समझ में आ गया। और न रह सका, इसलिए तुम लोगों को मैंने बुलाया है। इतने दिनों में तक मैंने उसको अपनी तरह बनाने में लगकर केवल धोखा खाया। हे मेरे प्रलय! अपने को मैं तुम्हारे बीच चूर-चूर करता रहूँगा—चिरकाल तक मेरा बन्धन नहीं है इसलिए किसी बन्धन को पकड़ कर रख नहीं सकता—और केवल तुम्हारा ही बन्धन है इस लिये अनन्तकाल से तुम सृष्टि के बन्धन को छुड़ा न सके। रहो मेरे रूप को लेकर। तुम रहो, मैं तुम्हारे अपरूप के बीच डुबकी लगाता हूँ।

असीम, तुम मेरे हो, तुम मेरे हो—यह कहते-कहते शचीश उठकर अंधेरे में नदी की ओर चला गया।

४

उसी रात के बाद से शचीश ने फिर, पहले की चाल पकड़ी। उसके नहाने-खाने का कोई ठिकाना नहीं रहा। कब उसके मन की तरगें प्रकाश की ओर उठतीं और कब वे अन्धकार की ओर उतर जातीं यह समझ में नहीं आता। ऐसे मनुष्य को भले आदमी के लड़के की तरह खूब खिला-पिला कर स्वस्थ रखने का भार जिसने लिया है भगवान ही उसकी सहायता करें।

उस दिन सारा दिवस धेरे-धेरे एकाएक रात में एक भयङ्कर आँधी आई। हम तीनों व्यक्ति अलग-अलग तीन कमरों में सोते, उन कमरों के सामने वाले बरामदे में मिट्टी के तेल का एक दीपक जला करता था। वह बुझ गया था। नदी तोड़-फोड़कर उठी थी, आकाश फोड़कर मूसलाधार पानी बरस रहा था। उस नदी की लहरों के छलछल और आकाश के जल के झर-झर शब्दों से, ऊपर निचे मिलकर प्रलय की महफिल में झमाझम करताल बजाने लगा। घने अन्धकार के गर्भ में क्या हिल-डोलकर चल फिर रहा था उसे मैं कुछ भी नहीं देख पाता था, फिर भी उसके अनेक प्रकार के शब्दों से सारा आकाश अन्धे लड़के की तरह भय से ठण्डा हो उठता था। झड़ी में मानों एक विधवा प्रेतिनी रो रही हो, आम

में डाल पत्ते मिलकर भाँय-भाँय शब्द कर रहे थे, कुछ री पर नदी के करारें टूट-टूटकर धड़ाम-धुडुम कर उठते थे, और हम लोगों के उस जीर्ण ममान की ठटरियों की दरारों में से बार-बार हवा की तीक्ष्ण छुरी विध जाती थी, जिससे वह एक बड़ जन्तु की तरह रह-रहकर चिग्घाड़ उठता था।

इस तरह की रात्री में हमलोगों के मन की खिड़कियों और दरवाजों की सिटकिनियाँ हिल उठती हैं, आँधी अन्दर प्रवेश कर जाती है, भद्र समानों को उलट-पलट कर देती है, पद फर-फर करते हुए कौन किस ओर किस ढङ्ग से उड़ने लगते हैं इसका कुछ भी पता नहीं लगता मुझे नींद नहीं आ रही थी। बिस्तर पर लेटे-लेटे क्या सब बातें सोच रहा था उन्हें यहाँ पर लिखकर क्या होगा? इस इतिहास में वे सब बातें जरूरी नहीं।

ऐसे समय में शचीश अपने अँधेरे कमरे में एकाएक बोल उठा—कौन है?

उत्तर सुनाई पड़ा, मैं हूँ दामिनी। तुम्हारी खिड़कियाँ खुली हुई हैं, कमरे में पानी की बौछार आ रही है, इसलिए बन्द करने आई हूं।

खिड़कियों को बन्द करते हुए दामिनी ने देखा कि शचीश अपने बिस्तर से उठ गया है। एक मुहुर्त के लिए वह मानो दुविधा में पड़ गया, उसके बाद तेजी से कमरे के बाहर चला गया। बिजली चमक रही थी और एक गम्भीर वज्र का गर्जन होने लगा।

दामिनी बहुत देर तक अपने कमरे की देहरी पर बैठी हुई बाट देखती रही। लेकिन कोई लौटकर आया नहीं। तूफानी हवा की अधीरता क्रमशः बढ़ती ही जा रही थी।

दामिनी से और नहीं रहा गया, वह बाहर निकल पड़ी।

हवा का तेज इतना प्रखर था कि उसमें खड़ा होना मुश्किल था। मालूम हुआ, मानों देवताओं के भृत्य गण उसकी भर्त्सना करते-करते उसे ढकेलते हुए ला रहे हैं। अन्धकार आज सजल हो उठा है। वर्षा का जल आकाश के समस्त छिद्रों के भर डालने के लिए जी-जान से लग गया है। इसी प्रकार विश्व-ब्रह्माण्ड को डुबा कर रो सकती तो दामिनी को शान्ति मिलती। अन्धकार को एकाएक बिजली ने चमक कर आकाश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक पट्-पट् शब्द के साथ फाड़ डाला। उस क्षणिक आलोक में दामिनी ने देखा कि शचीश नदी के किनारे खड़ा है। दामिनी अपनी प्राणपण शक्ति से उठकर एक ही दौड़ में एकदम से उसके पैर के पास आ गयी, हवा के गम्भीर शब्द को मात करती हुई बोल उठी, मैं तुम्हारा पैर छूकर कहती हूँ, तुम्हारे निकट मैंने कोई अपराध नहीं किया, फिर भी मुझे इस तरह क्यों सजा दे रहे हो?

शचीश चुपचाप खड़ा रहा।

दामिनी ने कहा—मुझे लात मारकर यदि नदी में फेंक देना चाहते हो तो फेंक दो, किन्तु घर लौट चलो।

शचीश घर लौट आया। अन्दर प्रवेश करते ही बोल उठा——मैं जिनको खोज रहा हूँ उनकी मुझे बड़ी आवश्यकता है—और मुझे किसी चीज की आवश्यकता नहीं है। दामिनी, तुम मेरे ऊपर दया करो, मुझे छोड़कर चली जाओ।

दामिनी कुछ देर चुपचाप खड़ी रही। उसके बाद बोली—यही होगा, मैं चली जाऊंगी।

* * *

५

बाद में मुझे दामिनी से आद्योपान्त सभी बातें मालूम हो गयी, लेकिन उस दिन मैं कुछ भी न जान सका था। इसलिए बिस्तर पर पड़े-पड़े जब मैंने देखा कि ये दोनों सामने के बरामदे से होते हुए अपने-अपने कमरे की ओर चले गये तब ऐसा मालूम हुआ कि मेरे दुर्भाग्य ने सीने पर सवार होकर मेरे गले को घर दबाया है। छटपटा कर उठ बैठा, उस रात को मुझे नींद नहीं आयी।

दूसरे दिन सबेरे दामिनी का यह कैसा स्वरूप! कल रात में तूफान का ताण्डव नृत्य, पृथ्वी पर केवल इसी लड़की के ऊपर मानों अपना पदचिन्ह आंकत कर गया है। इतिहास कुछ भी न जानते हुए मुझे शचीश के ऊपर बड़ा क्रोध आने लगा।

दामिनी ने मुझसे कहा—श्रीविलास बाबू मुझे कलकत्ते पहुँचा दो।

यह दामिनी के लिए कितनी बड़ी कठिन बात है, यह मैं खूब अच्छी तरह से जानता हूँ लेकिन मैंने उससे कोई प्रश्न पूछा नहीं। एक बहुत बड़ी वेदना में भी मुझे कुछ आराम मालूम हुआ। दामिनी का यहां से चला जाना ही अच्छा है। पहाड़ के ऊपर टकराते-टकराते नौका तो चूर-चूर हो गयी।

आते समय दामिनी ने शचीश को प्रणाम करते हुए कहा—श्रीचरणों में अनेक अपराध कर चुकी हूँ, क्षमा करना।

शचीश जमीन की ओर आंख झुका कर बोला—मैंने भी अनेक अपराध किये हैं, सब माज धोकर ठीक कर लूंगा।

दामिनी के हृदय में एक प्रलय की आग जल रही है। कलकत्ते के रास्ते में आते आते यह मैं अच्छी तरह समझ गया। उसी का ताप लगने से जिस दिन मेरा भी मन बहुत अधिक गरम हो उठा था, उस दिन मैंने शचीश को लक्ष्य करके कुछ कड़ी बातें कह दी थी। दामिनी ने क्रुद्ध होकर कहा—देखो तुम उनके सम्बन्ध में मेरे सामने ऐसी बात मत कहना। उन्होंने मुझे किस हद तक बचाया है इसका हाल तुम क्या जानते हो। तुम तो केवल मेरे ही दुःख की तरफ देखते हो—मुझे बचाने के लिए जाकर उन्होंने जो दुःख झेला है, उस तरफ शायद तुम्हारी दृष्टि नहीं है। सुन्दर को मारने के लिए गया था इसी कारण असुन्दर की ही छाती में लात लग गया। अच्छा हुआ, बहुत अच्छा हुआ! यह कह-दामिनी धमाधम अपनी छाती पर मुक्कों का प्रहार करने लगी। मैंने उसका हाथ दबाकर पकड़ लिया।

कलकत्ते पहुँचा तो शाम हो चुकी थी, उसी क्षण दामिनी को उसकी मौसी के घर पहुँचा कर मैं अपने एक परिचित मेस में जा पहुँचा। मुझे पहचानने वालों में जिन्होंने मुझे देखा, वे चौंक उठे बोले—यह क्या! तुम्हारी तबियत खराब है क्या!

दूसरे दिन पहली ही डाक से दामिनी की चिट्ठी मुझे मिली, मुझे ले चलो, यहां मेरे लिए जगह नहीं है।

मौसी दामिनी को मकान में न रखेगी। हमलोगों की निन्दा से शहर में होहल्ला मच गया है। दल से हम लोगों के अलग हो जाने के थोड़े दिन बाद, साप्ताहिक पत्रों के पूजा अंक निकले हैं, इसलिए हमलोगों की बलिवेदी तैयार थी, रक्तपात में त्रुटि नहीं हुई। शास्त्र में, स्त्री जाति या पशु की बलि निषिद्ध है, किन्तु मनुष्य के लिए उसी में सबसे अधिक उल्लास रहता है। पत्रों में स्पष्ट रूप से दामिनी का नामोल्लेख नहीं था, किन्तु बदनामी

जरा भी अस्पष्ट न हो जाय इसका उपाय किया गया था, इसीलिए दूर सम्पर्कीया मौसी का घर दामिनी के लिए भयंकर संकीर्ण हो उठा।

इस बीच दामिनी के बाप मर गये हैं, किन्तु भाइयों में से कई हैं, यही मुझे मालूम है। मैंने दामिनी से उनका पता ठिकाना पूछा, उसने गरदन हिला दी, कहा—वे बहुत ही गरीब हैं।

असल बात यह है कि दामिनी उनको परेशानी में डालना नहीं चाहती। भय था कि भाई लोग भी पीछे जवाब न दे दें, यहां जगह नहीं है। उसका आघात तो वह सहन न कर सकेगी! मैंने पूछा, ऐसी हालत में तुम कहां जाओगी।

दामिनी ने कहा—लीलानन्दन स्वामी के पास।

लीलानन्दन स्वामी! थोड़ी देर तक मेरे मुंह से बात नहीं निकली। भाग्य की यह कैसी निदारुण लीला है!

मैंने कहा—स्वामीजी क्या तुमको ग्रहण करेंगे?

दामिनी ने कहा—खुश होकर ग्रहण करेंगे।

दामिनी मनुष्य पहचानती है। जो लोग दल संघटित करने वालों की श्रेणी के है उन्हें यदि मनुष्य मिलते हैं तो सत्य की प्राप्ति की अपेक्षा भी वे अधिक खुश होते हैं। लीलानन्दन स्वामी के यहां दामिनी के लिए जगह की कमी न होगी यह ठीक है, किन्तु—

ठीक ऐसे ही समय में मैंने कहा—दामिनी! एक रास्ता है यदि अभय प्रदान करो तो बताऊं।

दामिनी ने कहा—बताओ सुनूं।

मैंने कहा—यदि मेरे जैसे पुरुष से विवाह कर लेना तुम्हारे लिए सम्भव हो तो—

दामिनी ने मुझे रोककर कहा—यह कैसी बात कह रहे हो श्रीविलास बाबू! तुम क्या पागल हो गये हो!

मैंने कहा—समझ लो कि पागल ही हो गया हूँ पागल हो जानेपर अनेक कठिन बातों की अति सरलता से मीमांसा करने की शक्ति उत्पन्न होती है। पागलपन अरब्य उपन्यास का वह जूता है—जिसे पहिनाने से संसार की हजारों व्यर्थ की बातों को एकदम पार कर लिया जाता है।

व्यर्थ की बात! व्यर्थ की बात तुम किसको कहते हो!

यही जैसे लोग क्या कहेंगे! भविष्य में क्या होगा! आदि आदि।

दामिनी ने कहा—और असल बात!

यही जैसे मेरे साथ विवाह करने से तुम्हारी कैसी दशा होगी।

यदि यही असल बात हो तो मैं निश्चिन्त हूँ क्योंकि इस समय मेरी जैसी दशा है उससे और खराब न होगी। दशा का पूर्णरूप से स्थान परिवर्तन करा सकने से मैं बच जाता। कम से कम करवट बदल सकने पर कुछ आराम मिलती ही है।

मेरे मनोभाव के सम्बन्ध में दामिनी को किसी तार से खबर नहीं मिली थी, इस बात में मैं विश्वास नहीं करता। किन्तु एक दिन यह खबर उसके लिए जरूरी खबर नहीं थी —कम से कम उसका किसी तरह उत्तर देना निष्प्रयोजन था। इतने दिनों के बाद एक जवाब की मांग उठ खड़ी हुई।

दामिनी चुपचाप सोचने लगी। मैंने कहा, दामिनी, मैं संसार में अत्यन्त साधारण मनुष्यों में ही एक हूँ। यहां तक कि मैं उससे भी कम हूँ, मैं तुच्छ हूँ। मुझसे विवाह करना और न करना बराबर है, अतएव तुम कुछ भी चिन्ता मत करो।

दामिनी की आँखें छल-छल कर उठीं। उसने कहा, तुम यदि साधारण मनुष्य होते तो मैं कुछ भी चिन्ता न करती।

और भी कुछ देर तक सोचकर दामिनी ने मुझसे कहा, तुम तो मुझको जानते हो।

मैंने कहा—तुम भी तो मुझे जानती हो।

इसी तरह बातचीत की गयी। जो सब बातें मुँह से नहीं कही गयी उसका परिणाम अधिक था।

पहले ही कह चुका हूँ, एक दिन मैंने अपनी अंग्रेजी वक्तृताओं में बहुत अधिक मन लगाया था इतने दिनों तक अवकाश मिलने से उनमें बहुतों का नशा टूट गया है। किन्तु नरेन अब भी मुझे वर्तमान युग का एक दैवलब्ध वस्तु ही जानता था। उसके एक मकान में किरायेदार के आने में डेढ़ महीने की देर थी। फिलहाल वहीं जाकर हमलोगों ने आश्रय लिया।

पहले दिन मेरे प्रस्ताव का पहिया टूट कर जिस मौन के गढ़े में जा गिरा; ऐसा मालूम हुआ था कि उसी स्थान पर हाँ और ना इन दोनों के बाहर गिरकर वह अटक गया है; कम से कम बहुत मरम्मत और बड़ी दौड़ धूप मचाकर यदि उसे ऊपर उठा लिया जाय तो अच्छा हो, किन्तु अचिन्तनीय परिहास में मन को धोखा देने के लिए ही मन की सृष्टि हुई है। सृष्टिकत के उसी आनन्द का उच्च हास्य इस बार के फाल्गुन में इस किराये के मकान की कुछ दीवारों के बीच बार-बार प्रतिध्वनित हो उठा।

मैं जो कुछ चीज हूँ, इतने दिनों तक दामिनी को इस बात पर लक्ष्य करने का समय नहीं मिला था, शायद और किसी तरफ से उसकी आँखों में कुछ अधिक प्रकाश आ पड़ा था। इस बार उसका सारा जगत् संकीर्ण होकर वहीं पर आ कर रुक

गया, वहां मैं ही केवल अकेला पड़ा था। इसीलिए मुझको पूरी आंख खोलकर देखने के सिवा दूसरा उपाय नहीं था। मेरा भाग्य अच्छा है, इसीलिए इसी समय में दामिनी ने मानों मुझे पहले-पहल देखा।...

अनेक नदियों पर्वतों समुद्र-तटों पर दामिनी के साथ-साथ घूमता रहा, साथ ही साथ झांझ करताल के तूफान में रस के तान से हवा में आग लगती रही, 'तुम्हारी चरणों में मेरे प्राण को प्रेम की फांसी लग गयी, इस पद की शिखा ने नये-नये अक्षरों में चिनगारियों की वर्षा की है। फिर भी परदा चल नहीं गया।

किन्तु कलकत्ते की इस गली में यह क्या हो गया! सड़े हुये पड़ोस के मकानों में चारों तरफ मानों पारिजात फूल की तरह खिल उठे। विधाता ने अपनी बहादुरी तो अवश्य ही दिखा दी है! ईंट लकड़ियों को उन्होंने अपने गान गान का सुर बना डाला और मेरी तरह साधारण मनुष्य के ऊपर उन्होंने कौन सा स्पर्शमणि स्पर्श करा दी कि मैं एक क्षण में असाधारण हो उठा।

जब परदा रहता है तब अनन्तकाल की दूरी रहती है, जब परदा टूट जाता है तब वह एक निमेष की बात हो जाती है, फिर विलम्ब नहीं हुआ। दामिनी बोली—मैं एक स्वप्न में थी, केवल इसी एक धक्के की देर थी। मेरे उस तुम और इस तुम के बीच में यह केवल एक खुमारी आ गयी थी। अपने गुरु को मैं बार-बार प्रणाम करती हूँ, उन्होंने मेरी यह खुमारी तोड़वा दी है।

मैंने दामिनी से कहा—दामिनी, तुम इतना ज्यादा मेरे मुंह की तरफ मत ताको। विधाता की यह सृष्टि जो सुन्दर नहीं है इसका पहले एक दिन जब कि तुमने आविष्कार किया था तब मैंने सह लिया था, किन्तु अब सह लेना बहुत कठिन हो जायगा।

दामिनी ने कहा--विधाता की यह सृष्टि बहुत सुन्दर है, मैं ~~ का आविष्कार कर रही हूँ।

मैंने कहा—इतिहास में तुम्हारा नाम रहेगा। उत्तर मेरु के बीचो-बीच जो दुस्साहसी अपना झण्डा गाड़ेगा उसकी कीर्ति इसके सामने तुच्छ है। यह तो दुःसाध्य साधन नहीं है, यह तो असाध्य साधन है।

फागुन का महीना इतना ज्यादा छोटा होता है, पहले कभी इतना असन्दिग्ध होकर नहीं समझा था। केवल तीस ही दिन—दिन भी चौबीस घंटे से एक मिनट भी अधिक नहीं। विधाता के हाथ में काल अनन्त हैं, तो भी इस तरह भद्दी शक्ल की कृपणता क्यों है, यह तो मैं समझ नहीं सकता !

दामिनी ने कहा—तुम जो यह पागलपन करने को तैयार हो गये हो, तुम्हारे घर के लोग क्या कहेंगे ?

मैंने कहा—वे मेरे सुहृद हैं। इस बार वे लोग मुझे घर से दूर निकाल देंगे। उसके बाद।

उसके बाद तुम और मैं मिलकर दोनों एकदम नये सिरे से शुरु से अन्त तक पूरा मकान बनवावगे—उसकी सृष्टि में केवल हम दोनो का ही हाथ रहेगा।

दामिनी ने कहा—और उसे घर की गृहिणी को एकदम जड़ से मरम्मत कर लेना होगा। वह भी तुम्हारे ही हाथ की सृष्टि हो जाय। पुराने समय की टूटी-फूटी चीजें उसमें कहीं पर कुछ भी न रहें।

चैत के महीने में दिन नियत करके विवाह का बन्दोबस्त किया गया दामिनी ने जोर देकर कहा—शचीश को बुलाना पड़ेगा !

मैंने कहा—क्यों ?

वे कन्या सम्प्रदान करेंगे।

वह पागल जो कहाँ घूम रहा है इसका पता ही नहीं है। चिट्ठी के बाद चिट्ठी लिखने लगा, पर उत्तर ही नहीं मिलता। अवश्य ही अबतक भी, वह उसी भुतहे मकान में है, नहीं तो

चिट्ठी वापस चली आती। किन्तु वह किसी की चिट्ठी खोलकर पढ़ता है या नहीं, इसमें सन्देह है।

मैंने कहा—दामिनी, खुद जाकर तुमको उसे निमन्त्रण दे आना होगा। 'पत्र द्वारा निमन्त्रण, त्रुटि के लिए क्षमा'—यह बात यहां न चलेगी। अकेले ही जा सकता था किन्तु मैं डरपोक आदमी हूँ। वह शायद इतनी देर में नदी के उस पार जाकर चकवों की पीठ के पर साफ करने की जाँच कर रहा होगा, वहां तुम्हारे सिवा जा सके ऐसी चौड़ी छाती और किसी का नहीं है।

दामिनी ने हँसकर कहा—वहां फिर कभी न जाऊंगी। मैंने प्रतिज्ञा की थी।

मैंने कहा—भोजन लेकर न जाओगी यही प्रतिज्ञा थी—भोजन का निमन्त्रण लेकर जाओगी क्यों नहीं!

इस बार किसी तरह की दुर्घटना नहीं हुई। दोनों जने, दोनों हाथ पकड़कर शचीश को कलकत्ते गिरफ्तार करके ले आये। छोटे-छोटे लड़के खिलौने पाकर जिस तरह खुश होते हैं, शचीश हम लोगों के विवाह की बात को लेकर उसी तरह खुश हो गया। हम लोगों ने सोच रखा था कि चुपचाप शुभ कर्म सम्पन्न कर दिया जायेगा। शचीश ने किसी तरह भी ऐसा नहीं होने दिया। विशेषतः बड़े चाचा के उस मुसलमानी मुहल्ले के लोगों को जब खबर मिली तब वे लोग इतना हल्ला मचाने लगे कि मुहल्ले के लोग सोचने लगे, काबुल के अमीर आ रहे हैं, अथवा कम से कम हैदराबाद के निजाम हैं।

और भी धूम मच गयी। अखबारों में दूसरी बार के पूजा अंक में एक जोड़ा बलिदान हुआ। हम उन्हें अभिशाप न देंगे। जगदम्बा सम्पादकों के खजाने में वृद्धि करें और पाठकों के नर रक्त के नशे में कम से कम इस बार की तरह कोई विघ्न न पहुँचे।

शचीश ने कहा—विश्री, तुमलोग मेरे मकान का भोग करो।

मैंने कहा—तुम भी हमलोगों के साथ आकर शामिल हो जाओ, फिर हमलोग काम में लग जायँ।

शचीश ने कहा—नहीं मेरा काम दूसरा है।

दामिनी ने कहा—हमलोगों के बहू-भात का निमन्त्रण पूरा किये बिना जा न सकोगे।

बहूभात के निमन्त्रण में बुलाये जानेवालों की संख्या असम्भव रूप से अधिक नहीं थीं। उसमें था वही शचीश।

शचीश ने तो कह दिया, आकर हमारे मकान का भोग करो, किन्तु वह भोग कैसा है यह तो हमलोग ही जानते हैं। हरिमोहन ने उस मकान पर कब्जा करके किरायेदार बसा दिया है। खुद ही व्यवहार में ला सकते थे, किन्तु पारलौकिक लाभ-हानि के सम्बन्ध में जो लोग उनके मन्त्री थे, उन्होंने अच्छा नहीं समझा—वहाँ प्लेग में मुसलमान की मृत्यु हुई थी। जो किरायेदार आवेगा उसकी भी तो एकन एक दिन मृत्यु होगी—किन्तु यह बात उससे छिपा रखने से ही काम बन जायेगा।

मकान का हरिमोहन के हाथ से किस तरह उद्धार किया गया, इसमें बहुत बातें हैं। मेरे प्रधान सहायक थे मुहल्ले के मुसलमान लोग। और कुछ नहीं जगमोहन का वसीयतनामा उन लोगों को एक बार दिखाया था। मुझे फिर वकील के घर दौड़-धूप करने की जरूरत नहीं पड़ी।

इतने दिनों तक घर से बराबर कुछ सहायता मिलती थी, वह अब बन्द हो गयी है। हम दोनों एक साथ मिलकर सहायता के बिना गृहस्थी चलाने लगे, उस में हमें आनन्द मिलता था। मेरे पास राय चाँद, प्रेम चाँद का मार्का था—सहज में ही प्रोफेसरी मिल गई। उसके बाद परीक्षा पास की। पेटेण्ट

से काम करते रहना ही बांसुरी की तान हैं, इस बात को मैं ठीक सुर से कह सकूं ऐसी कवित्व शक्ति मुझमें नहीं है। किन्तु दिन जो बीतने लगे वे पैदल चलने से नहीं, दौड़ने से भी नहीं, एकदम नाचकर चले गये।

और एक फागुन बीत गया। उसके बाद फिर नहीं बीता।

उस बार गुफा से लौट आने के बाद से दामिनी की छाती में एक व्यथा होने लगी थी, उस व्यथा की बात उसने किसी से नहीं कही। जब उसका प्रकोप बढ़ गया तब पूछने पर वह बोली—यह व्यथा मेरे लिए गुप्त ऐश्वर्य है, यह मेरा स्पर्शमणि है। इसी कौतुक को लेकर ही तो मैं तुम्हारे पास आ सकी हूँ, नहीं तो क्या मैं तुम्हारे योग्य हूँ।

डाक्टरों में से एक-एक व्यक्ति इस बीमारी का एक-एक नामकरण करने लगे। उनके किसी के प्रेस्क्रिप्शन के साथ किसी का मेल नहीं बैठा। अन्त में विजिट और दवाखाने के देने की आग से मेरे संचित सोने को खाक बनाकर उन लोगो ने लंका काण्ड समाप्त कर दिया और उत्तर काण्ड में मन्त्रणा दे दी कि हवा पानी बदलना पड़ेगा। तब हवा के अतिरिक्त मेरे पास और कोई भी चीज बाकी नहीं रह गयी थी।

दामिनी ने कहा—जहां से यह व्यथा ढोकर ले आयी हूँ मुझे उसी समुद्र के किनारे ले चलो—वहां हवा का अभाव नहीं है।

जिस दिन माघ की पूर्णिमा फागुन में जा पड़ी, ज्वार से भरे आंसू की वेदना से सारा समुद्र फूल-फूल उठने लगा, उस दिन दामिनी ने मेरे पैरों की धूलि लेकर कहा—साधना नहीं मिटी, दूसरे जन्म में फिर तुमको पाऊँ, यही चाहती हूँ।

॥ समाप्त ॥

हमारे प्रकाशन

२) उड़ती धूल
३॥) धरती धूप और बादल
३॥) पारस
३॥) लालरेखा
४) पगडंडी
४) अँगड़ाई
३॥।) खंडहर
३॥) पायल
२)मदभरी की रात
३) सोलह अगस्त
३॥) धड़कन
३॥) मुमताज
५) सूखेपत्ते
३।) चितवन
२॥।) अनारकली
३।) पीली कोठी
२॥) पपीहा बोले आधीरात
२॥) सपने की रानी
२॥) कालीघटा
३॥) मकड़ी का जाल
२॥) तारों भरी रात
४) जयमेवाड़
३) चौरंगी
१॥।) रोटी

३॥) गांधी चबूतरा
३॥) दुर्गादास
३) विषकन्या
३॥) काजल
१॥) राजपूतनंदिनी
२।) बागी की बेटी
१॥) होटल में खून
२॥) प्रेम के आंसू
२॥) कसक
२) मिश्र का रावण
३) दुदिन
२॥) त्याग
१॥।) राज कुमारी
२) प्यासी तलवार
१॥) नदी में लाश
१॥) मन की पीर
३॥) घर की लाज
२॥) नर और नारी
१॥।) ठोकर
२॥) ममता
१॥) फल वाली
२) विचित्र-प्रबन्ध
२) महामाया
१॥) बड़े चाचाजी

चौधरी एण्ड सन्स, वाराणसी—१